मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : **विजयशीलचन्द्रसूरि**

३८

સ્ત્રી-તીર્થંકર રૂપમાં મલ્લિનાથની એક પ્રતિમા (મ.પ્ર.ગુના)

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2007

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

३८

सम्पादक:
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ३८

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:
क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

संशोधन ए एक रीते सत्यशोधननी घणी नजीकनी प्रवृत्ति छे. साचो पाठ शोधवो-नक्की करवो तो कृति-संशोधन. साचो इतिहास शोधवो ते इतिहास-संशोधन. साचो अर्थ निश्चित करवो ते अर्थनुं के विषयनुं शोधन. आ बधांये संशोधनो साथे 'साचो' शब्द अनिवार्यपणे जोडाई गयो छे ते जोई शकाशे. आथी ज लागे छे के संशोधन ए सत्यने पामवानो अने असत्यथी उगरवानो स्वस्थ अने निरामय मार्ग छे.

परन्तु संशोधन ए सत्यशोधननो मार्ग त्यारे ज बने के ज्यारे चित्तमां संशोधननी दृष्टि विकसी होय अने ते संशोधक-वृत्तिरूपे परिणमी होय. तेवी दृष्टि तथा वृत्ति विकसी गई होय तेने माटे संशोधन ए Full time के Part time **JOB** न बने; अथवा आटली समयमर्यादामां आटलां Papers नहि लखुं तो प्रमाणपत्र के वेतनवृद्धि के बढती वगेरे लाभो नहि मळे, माटे Papers घसडी ज नाखुं, एवी मांदली मनोवृत्तिजन्य वेठ न बने. बल्के पछी तो संशोधन एनो धर्म बनी जाय; एनी नजर पडे त्यां एने सत्य जडतुं ज आवे, अने असत्य के गलत पाठ, मान्यता, अर्थ, इतिहास इत्यादि तेने कठतां ज रहे.

संशोधननो व्यवसाय ए शोधक-दृष्टिना विकासनी खातरी आपे ज एवुं हमेशां नथी होतुं. उदाहरण माटे आजकाल आपणे त्यां तैयार थतां Ph.D. माटेना महानिबन्धो जोवा जोईए. अपवाद होय तेने बाद करतां, महदंशे, संशोधक-दृष्टिविहीन एवा व्यवसायी संशोधननां तेमां उघाडां दर्शन थया विना नहि रहे. आवुं बने त्यारे 'संशोधन=सत्यशोधन' एवुं समीकरण जोखमाय छे.

संशोधनमां जेम 'बाबावाक्यं प्रमाणं' न चाले, तेम 'थोडा इधरसे, थोडा उधरसे' एवुं सगवडियुं संयोजन पण न चाले.

– शी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

श्री श्रीधर प्रणीत गुरुस्थापना-शतक	म. विनयसागर	1
पादमूर्त्तिमयं स्तोत्रपञ्चकम्	अमृत पटेल	11
श्रीश्रेयांसजिन स्तवन	सं. उपाध्याय भुवनचन्द्र	34
चोत्रीश अतिशयवर्णन गर्भित श्रीसीमन्धरजिन स्तवन	सं. पं. महाबोधिविजयजी	46

पत्र चर्चा

जसराज ही जिनहर्षगणि हैं	म. विनयसागर	54
उ. चरित्रनन्दी की गुरुपरम्परा एवं रचनाएं	म. विनयसागर	56
कल्याणचन्द्रगणि	म. विनयसागर	62
सम्पादकीय टिप्पणी : चिन्तन	म. विनयसागर	65
विहंगावलोकन	उपा. भुवनचन्द्र	67

माहिती-१

भारतीय योग परम्परा के परिप्रेक्ष्य में जैन योग
विषयक त्रिदिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी का पहली बार आयोजन 69

माहिती - २

नवां प्रकाशनो 71

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री श्रीधर प्रणीत

गुरुस्थापना-शतक

म. विनयसागर

पञ्च परमेष्ठि महामन्त्र में पञ्च परमेष्ठि देवतत्त्व और गुरुतत्त्व का वर्णन है । देवतत्त्व में अरिहन्त और सिद्ध का समावेश होता है । गुरुतत्त्व में साधु, उपाध्याय और आचार्य का समावेश होता है । धर्मतत्त्व सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है । केवली प्ररूपित दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप धर्म के अङ्ग हैं । इस लघुकायिक ग्रन्थ में गुरुतत्त्व का विस्तार से निरूपण हुआ है ।

इस शतक के कर्ता श्रीधर हैं । इस ग्रन्थ में कहीं भी गुरु का या संवत् का उल्लेख नहीं है । अतः यह निर्णय कर पाना सम्भव प्रतीत नहीं होता कि श्रीधर[१] श्रमण है या श्रावक । तथापि यह निश्चित है कि इसकी रचना महाराष्ट्री व प्राकृत में हुई है, न कि प्राकृत के अन्य भेदों मे । रचना सौष्ठव, पदलालित्य और प्राञ्जलता को देखते हुए इसका रचनाकाल अनुमानतः १३वीं-१४वीं सदी निर्धारित किया जा सकता है । इसमें सन्देह नहीं कि श्रीधर श्रमण हो या श्रावक, गुरुतत्त्व का व्यापक अनुभव रखता है । उत्तराध्ययन सूत्र, भगवती सूत्र और तत्त्वार्थ सूत्र का श्रीधर ज्ञाता था। दुप्पसहसूरि का उल्लेख होने से यह भी सम्भावना की जा सकती है कि तन्दुलवैचारिक प्रकीर्णक का भी ज्ञाता था । अतः यह भी निश्चित है कि यह श्वेताम्बर ही था ।

गुरुस्थापना शतक का 'जैसलमेर हस्तलिखित ग्रन्थसूची', 'जिनरत्नकोष' एवं 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' में इस कवि का या इस लघुकाव्य ग्रन्थ का उल्लेख न होने से यह दुर्लभ ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ किस भण्डार का है इसका मुझे भी स्मरण नहीं है । स्वर्गीय आगम प्रभाकर मुनिराज भी पुण्यविजयजी महाराज से उनके विद्वान् साथी श्री नगीनभाई शाह लिखित प्रतिलिपि सन् १९५१ में प्राप्त हुई थी ।

---

१. गाथा क्र. ९८-१०१ पढने से श्रीधर श्रावक था यह स्पष्ट हो जाता है । **शी.**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका मुख्य वर्ण्य विषय है :- गाथा १ एवं १०३ में इसका नाम **गुरुथावणासयगं** लिखा है । गाथा १०३ में **सीधरेण रइयं** से कवि ने अपना नाम सूचित किया है । धर्म विनयप्रधान है इस कारण चतुर्विध संघ को इसका अनुकरण करना चाहिए । यह धर्म और चतुर्विध संघ श्रीपुण्डरीक गणधर से प्रारम्भ होकर दुप्पसहसूरि तक स्थिर रहेगा । इस दुषम काल में श्रमण अल्प होंगे और मुण्ड अधिक होंगे । इसी कारण आचार्यगणों से धर्माधर्म की जानकारी श्रावकों को होती है । सुगुरु-कुगुरु का भेद करते हुए षष्ठ गुणस्थानीय प्रमत्त और सप्तम गुणस्थानीय अप्रमत्त का भगवती सूत्र के आधार पर भेद-विभेद दिखाते हुए सुन्दर विश्लेषण किया है । उन सुगुरुओं की कृपा से ही श्रमणोपासक नाम सार्थक होता है अन्यथा नहीं। सद्गुरु के प्रसाद से ही सत्अनुष्ठान, सात क्षेत्रों का ज्ञान, और सम्पूर्ण समाचारी का ज्ञान भी उन्हीं के उपदेश से प्राप्त हो सकता है । कई ऐसा कहते हैं कि वर्तमान में सुसाधु नहीं है । उन्हें यह सोचना चाहिए कि सुधर्म स्वामी से जो साधुपरम्परा चल रही है वह आदरणीय एवं अनुकरणीय है। कई श्रावक लोग सुगुरु के अभाव में जो कि रागद्वेष से पूरित हैं, यथाछन्द, स्वच्छन्द हैं, अर्थात् वेशधारी होते हुए भी जो शिथिलाचारी हैं उन कुगुरुओं को सुगुरु मानकर जो व्रतादि ग्रहण करते हैं या दूसरों को प्रेरित करते हैं, वह सचमुच में धिक्कार के योग्य हैं । व्रत, अरिहंत, सिद्ध, साधु, देव और आत्मा के समक्ष ही ग्रहण किये जाते हैं, स्वच्छन्दमतियों के समीप नहीं। सुगुरु के अभाव में कई श्राद्ध इन वेशधारियों की निश्रा में जो व्रत-क्रियादि करते हैं वे वास्तव में अत्यन्त मूढ़ हैं । दुषम-सुषम काल में साधु के बिना धर्म विच्छिन्न हो जाता है तो इस दुषम काल की तो बात ही क्या ?। पल्लवग्राही पाण्डित्यधारक वेशधारी दर्शन से बाह्य हैं। सात निह्नवों का, कूलवालुक का उदाहरण देते हुए इनको शासन के प्रत्यनीक बताये है । अतएव ३६ गुणधारक आचार्य ही सुगुरु हैं, उनके आश्रय में ही धर्मादि कृत्य करने चाहिए । इस प्रकार सुगुरु और कुगुरु का भेद दिखाते हुए सुगुरु की निश्रा ही श्राद्ध के लिए ज्ञेय और उपादेय है तथ उन्हीं सुगुरुओं की आश्रय में समस्त धर्म-व्रतादि कृत्य करने से श्राद्ध का कल्याण हो सकता है, क्योंकि वे धर्म के पूर्ण जानकार, व्यवहार और निश्चय के जानकार तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुश्रुत होते हैं अतः वे ही सुगुरु हैं ।

अन्त में कवि कहता है कि इस लघु कृति में जो कुछ उत्सूत्र वचन लिखने में आया हो उसका संशोधन बहुश्रुत ज्ञानी मेरे ऊपर अनुग्रह करके करें । गुरु के उपदेश से ही जिनवचन का सार ग्रहण कर यह शतक लिखा है ।

विचारणीय प्रश्न है कि श्रावक के १२ व्रत कहे गए हैं । सुगुरु के अभाव में १२वाँ अतिथि संविभाग व्रत सम्भव नहीं है, किन्तु यथाछन्दी वेशधारी सुगुरु के अभाव में भी १२वाँ व्रत स्वीकार करते हैं (गाथा ३८ से ४०) ।

आज के समय में भी श्रावक धर्म की दृष्टि से यह कृति अत्यन्त ही उपादेय और आचरणीय है ।

गुरुस्थापना-शतक

नमिरसुरमउडमाणिक्कतेयविच्छुरियपयनहं सम्मं ।
नमिऊण वद्धमाणं वुच्छं **गुरुठावणा-सयगं** ॥१॥
हीणमई अप्पसुओ अनाणसिरिसेहरो तहा धणियं ।
गंभीरागमसायर -पारं पावेउमसमत्थो ॥२॥
जुग्गोहमजुग्गो वि हु जाओ गुरुसेवणाइ तं जुत्तं ।
जं सूरसेवणाए चंदो वि कलाणिही जाओ ॥३॥
गुरुआगराओ सुत्तत्थ-रयणाणं गाहगा य तिन्नेव ।
रागेण य दोसेण य मज्झत्थत्तेण णेयव्वा ॥४॥
पढमो बीओऽणरिहो तइओ सुत्तत्थरयणजुग्गु त्ति ।
दिट्ठंतो आयरिओ अंबेहि पओयणं जस्स ॥५॥
धम्मं विणयपहाणं जे(जं?) भणियं इत्थ सत्थगारेहिं ।
सो कायव्वो चउविहसंघो समणाइए सम्मं ॥६॥
जं विणओ तं मुखं(क्खं?) छंडिज्जा पंडिएहिं नो कहवि ।
जं सुयरहिओ वि नरो विणएण खवेय(इ) कम्माइं ॥७॥
जिणसासणकप्पतरुमूलं साहू सुसावया साहा ।
मूलम्मि गए तत्थ य अवरं साहाइयं विहलं ॥८॥
सिरिपुंडरीयपमुहो दुप्पसहो जाव चउविहो संघो ।
भणिओ जिणेहि जम्हा न हु तेण विणा हवइ तित्थं ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतः-

न विणा तित्थं नियंठेहिं नातित्था य नियंठया ।
छक्कायसंजमो जाव ताव अणुसज्जणा दोण्हं ॥१०॥
तम्हा आयरिया वि हु संति नत्थि त्ति जे वियारंति ।
तं मिच्छा जओ जणे तेच्चिय सुत्तत्थदायारो ॥११॥
बहुमुंडे अप्पसमणे य इय वयणाओ य संति आयरिया ।
जेसि पसाया सड्ढा धम्माधम्मं वियाणंति ॥१२॥
जह दिणरत्तिं सम्मं मिच्छं पुत्रं तहेव पावं च ।
तह चेव सुगुरु कुगुरु मन्नह मा कुणह मय(इ)मोहं ॥१३॥
चरणस्स नव य ठाणा इह य पमत्तापमत्तअहिगारो ।
तत्थ अपमत्तविसयं कह लम्बेइ इत्थ एगविहं ॥१४॥
होइ पमत्तम्मि मुणी चउक्कसायाण तिव्वउदयम्मि ।
स पमत्तो तेसिं चिय अपमत्तो होइ मंदुदए ॥१५॥
पमत्ते नोकसायाण उदएणं इत्थ चरणजुत्तो वि ।
अट्टज्झाणोवगओ तेण विणा होइ अपमत्ते ॥१५॥
नाणंतरायकम्मं लम्बेइ तिविहं पमत्त-अपमत्ते ।
बीयं छच्चउ पण नव-भेएहिं बंधुदयसंते ॥१६॥
तेरिक्कारस जोगा हेउणो पुण हवंति छ चउवीसा ।
लेसाओ छच्च तिन्ने य हुंति पमत्तापमत्तेसु ॥१७॥
अविरय विरयाविरएसु सहसपुहुत्तं हवंति आगरिसा ।
विरए य सयपुहुत्तं लब्भेंति पमायवसगेण ॥१९॥

यतः

ठिइठाणे ठिइठाणे कसायउदया असंखलोगसमा ।
अणुभागबंधठाणा इय इक्किक्के कसाउदए ॥२०॥
कम्मस्स य पुण उदए अवराहो होइ नेव तव्विरहे ।
इय जाणिऊण सम्मं मा कुज्जा संजमे अरुइं ॥२१॥
अपमत्तपमत्तेसुं अंतमुहुत्तं जहक्कमं कालो ।
समणाण पुव्वकोडी ता लब्भइ कह ण एगविहं ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमे य पंचमंगे य वियारिए इत्थ होइ सुहबुद्धी ।
ता आलंबिय भाउय ! एगपयं गच्छ मा मिच्छं ॥२३॥
साहूणं विणएणं वयणपरेणं च तह य सेवाए ।
समणोवासगनामं लब्भइ न हु अन्नहा कहवि ॥२४॥
जो सुणइ सुगुरुवयणं अत्थं वावेइ सत्तखित्तेसु ।
कुणइ य सदणुट्ठा(ट्ठा)णं भन्नइ सो सावओ तेण ॥२५॥
जं निज्जइ जिणधम्मं जं लब्भइ सुत्त-अत्थपेयालं ।
सो पुण साहुपसाओ ता मा होहिसि कयग्घेण ॥२६॥
सव्वा सामायारी उवएसवसेण लब्भइ मुणीणं ।
सा पुण सुंदरबुद्धी कीरइ जं अणुवएसेण ॥२७॥
संभिन्नसुयस्सऽत्थं सुसंजओ वि हु न तीरए कहिउं ।
ता तुच्छमई सड्ढो कह होइ वियारणसमत्थो ॥२८॥
केवलमभिन्नसुयं मन्निज्जइ विवरणासमत्थेहिं ।
तं पुण मिच्छत्तपयं जह भणियं पुव्वसूरीहिं ॥२९॥
अपरिच्छियसुयनिहस्स केवलमभिन्नसुत्तचारिस्स ।
सव्वुज्जमेण वि कयं अन्नाणतवे बहुं पडइ ॥३०॥
केई भणंति इण्हिं सुसावया संति इत्थ नो साहू ।
तं पुण वितहं जम्हा न हु कोई कामदेवपए ॥३१॥
सिरि सुहमसामिणा जं सुत्तम्मि परूवियं तहच्चेव ।
साहुपरंपरएणं अज्ज वि भासंति भवभीरू ॥३२॥
"जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं ।
तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेण ॥३३॥"
तं पुण विणयाणुगुणं सप्पुरिसाणं हवेइ सुहहेऊ ।
अविणीयस्स पणस्सइ अहवा वि विवड्ढए कुमई ॥३४॥
आयरियाण सगासे सुत्तं अत्थं गहित्तु नीसेसं ।
तेसिं पुण पडिणीओ वच्चइ रिसिघायगाण गइं ॥३५॥
जाणंता वि य विणयं केई कम्माणुभावदोसेणं ।
नेच्छंति पउंजित्ता अभिभूया रागदोसेहिं ॥३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपइ केई सड्ढा अलद्धगुरुणो वयाइउच्चारं ।
कारिंति परजणाणं हीही धिट्ठत्तणं तेसिं ॥३७॥
धम्मो दुवालसविहो सुसावयाणं जिणेहि पन्नत्तो ।
साहु-अभावा सो पुण इक्कारसहा हवइ तेसिं ॥३८॥
इह अतिहिसंविभागो सुसाहूणं चेव होइ कायव्वो ।
सामन्नानाणदंसणवुड्ढिकए परमसड्ढेहिं ॥ ३९ ॥
जे पुण सड्ढाण च्चिय बारसमवयं पुणो परूविंति ।
कारिंति य अप्पेच्छा ते णेयव्वा अहाच्छंदा ॥४०॥
केई सुबुद्धिनायं परिभाविय पन्नविंति उच्चारं ।
कारंति य सा सुंदरबुद्धी न हु होइ निउणमई ॥४१॥
जं पुण सुगुरुसमीवे सुबुद्धिणा गहिय-देसियं धम्मं ।
हेण समं समसीसी अलद्धगुरुणो न ते होइ ॥४२॥
जे पुण अलद्धगुरुणो जहा तहा कारविंति उच्चारं ।
ते जिणमइ(य)पडिणीया न हुंति आराहगा कहवि ॥४३॥
साहीणे साहुजणे गिहीण गिहिणो वयाइं जो देइ ।
साहुअवन्नाकरणा सो होइ अणंतसंसारी ॥४४॥
गिहिणो गिहत्थमूले वयाइं पडिवज्जओ महादोसो ।
पंचेव सक्खिणो जं पच्चक्खाणे इमे भणिया ॥४५॥
अरिहंत सिद्ध साहू देवो तह चेव पंचमो अप्पा ।
तम्हा गिहत्थमूले वयगहणं नेय कायव्वं ॥४६॥
जं सच्छंदमईए रएसु उच्चारिएसु पुण तेसिं ।
जइ कहवि होइ खलणा ता कह सुद्धी गुरूहि विणा ॥४७॥
लज्जाइ गारवेण इ बहुस्सुयमएण वावि दुच्चरियं ।
जे न कहंति गुरूणं न हु ते आराहगा हुंति ॥४८॥
कच्छमाईकिरिया सड्ढाणं जाव अणस्सणं भणिया ।
साहुवयणेण किज्जइ अन्नो पुण किं वहइ गव्वं ? ॥४९॥
संपइ भणंति केई जीवा पावंति अस्सुयं धम्मं ।
सच्चं पुण ते मूढा सुयपरमत्थं न याणंति ॥५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्तेयबुद्धिलाभेण जाईसरणेण ओहिनाणेण ।
दट्ठूण पुव्वसूरिं तो पच्छा लहइ जिणधम्मं ॥५१॥
तत्थ य साहुपसाओ नेयव्वो इत्थ सत्थगारेहिं ।
सच्छंदमईणं पुण वड्ढइ कुमई न संदेहो ॥५२॥
संपइ केई सड्ढा गाढं किरियं कुणंति गुरुरहिया ।
न निस्साइं कुणंते हीलंता हुंति अइमूढा ॥५३॥
कुगुरूणं परिहारे सुगुरुसमीवे कियाइ किरियाए ।
जायइ सिवसुहहेऊ सुसावयाणं न संदेहो ॥५४॥
सूरेण विणा दिवसं अब्भेण विणा न होइ जलवुट्ठी ।
बीएण विणा धन्नं न तहा धम्मं गुरूहि विणा ॥५५॥
छसु अरएसुं जइ वि हु सव्वगईसुं पि लब्भए सम्मं ।
धम्मं तु विरइरूवं लब्भइ गुरुपारतंतेहिं ॥५६॥
जह आहारो जायइ मणसा किरियाइ देवमणुयाणं ।
सम्मत्तचरणधम्माण परोप्परं एस दिट्ठंतो ॥५७॥
आवस्सयाइ मुत्तुं केई कुव्वंति निच्चलं झाणं ।
ते जिणमयवरलोयणरहिया मग्गंति सिवमग्गं ॥५८॥
सयलपमायविमुक्का जे मुणिणो सत्तमाइठाणेसु ।
तेसिं हवेइ निच्चलझाणं इयराण पडिसेहो ॥५९॥
धम्मज्झाणं चउव्विहभेयं पकुणंतु भावओ भविया ।
आवस्सयाइजुत्तं जह सुलहो होइ सिवमग्गो ॥६०॥
विहिअविहिसंसएणं केई गिण्हित्तु किं पि न(नो?)वायं ।
किरियं नो भवभीरू कुणंति तेसिं पि अन्नाणं ॥६१॥
जइ नत्थि च्चिय गुरुणो ता तेण विणा कहं वहइ तित्थं ।
अरएहिं बहुएहिं तुंबेण विणा जहा चक्कं ॥६२॥
अह दव्वखेत्तकालं वियारिऊणं गुरूसु अणुरायं ।
कुज्जा चइत्तु माणं सुधम्मकुसला जहा होह ॥६३॥
नियगच्छे परगच्छे जे संविग्गा बहुस्सुया साहू ।
तेसिं अणुरागमइं मा मुंचसु मच्छरेण हओ ॥६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संविग्गमच्छरेणं मिच्छद्दिट्ठी मुणी वि नायव्वो ।
मिच्छत्तम्मि न चरणं तत्तो य विडंबणा दिक्खा ॥६५॥
वेसं पमाणयंता केई मन्नंति साहुणो सव्वे ।
केई सव्वनिसेहं तत्थ य दुण्हं पि मूढमई ॥६६॥
जह नाइल-सुमईहिं सुहगुरु-कुगुरूंण मन्नणं विहियं ।
ना(ता?) अज्ज वि भेयदुगं गिण्हसु सुद्धं परिक्खित्ता ॥६७॥
साहूहिं विणा धम्मो वुच्छिन्नो आसि दुसमसुसमाए ।
सड्ढेहि समत्थेहि वि न रक्खिओ अज्ज का वत्ता ? ॥६८॥
समणसमणीहि सावय-सुसावियाहिं च पवयणं अत्थि ।
मन्नसु चउसमवायं जइ इच्छसि सुद्धसम्मत्तं ॥६९॥
संघे तित्थयरम्मी सूरीसुं सूरिगुणमहग्घेसु ।
अप्पच्चओ न जेसिं तेसिं चिय दंसणं सुद्धं ॥७०॥
जे उण इय विवरीया पल्लवगाही सुबोहसंतुट्ठा ।
सुबहुं पि उज्जमंता ते दंसणबाहिरा नेया ॥७१॥
जह वि हु पमायबहुला मुणिणो दीसंति तह वि नो हेया ।
जेसिं सामायारी सुविसुद्धा ते हु नमणिज्जा ॥७२॥
जइ एवं पि हु भणिए मन्निस्सह नेय साहुणो तुब्भे ।
ता उभओ भट्ठाणं न सुग्गई नेय परलोगो ॥७३॥
जम्हा गुरूण सिक्खं सिक्खंत च्चिय हवंति हु सुसीसा ।
तेसिं पुण पडिणीया जम्मणमरणाणि पावंति ॥७४॥
हंतूण स(से?)वमाणं सीसे होऊण ताव सिक्खाहि ।
सीसस्स हुंति सीसा न हुंति सीसा असीसस्स ॥७५॥
जइ गुरुआणाभट्ठो सुचिरं पि तवं तवेइ जो तिव्वं ।
सो कूलवालयं पिव पणट्ठधम्मो लहइ कुगइं ॥७६॥
अणमन्नंतो नियगुरुवयणं जाणंतओ वि सुत्तत्थं ।
इक्कारसंगनिउणो वि भवे जमालिव्व लहइ दुहं ॥७७॥
संपइ सुगुरूहि विणा छउमत्थाणं न कोई आहारो ।
साहूण जओ विरहे सड्ढा वि हु मिच्छगा जाया ॥७८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"मइभेयाऽसच्चग्गह २ संसग्गीए ३[य] अभिणिवेसेणं ४ ।
चउहा खलु मिच्छत्तं साहूणमदंसणेणऽहवा ॥७९॥"
जिणवयणं दुन्नेयं अइसयनाणीहिं नज्जए सम्मं ।
ववहारो पुण बलवं न निसेहो अत्थि साहूणं ॥८०॥
मन्निज्ज चरणधम्मं मा गव्विज्जा गुणेहि नियएहि ।
न य विम्हओ वहिज्जइ बहुरयणा जेण महपुढवी ॥८१॥

यतः-

मा वहउ कोइ गव्वं इत्थ जए पंडिओ अहं चेव ।
आसव्वन्नुमयाओ तरतमजोगेण मइविहवा ॥८२॥
भत्तीसु अभत्तीसु य गुरुनिन्हवणे य इत्थ दिट्ठंता ।
सिरिइंदभूइ - मंखलिपुत्तोरगसूयरो य तहा ॥८३॥
गुरुनिन्हवणे विज्जा गहिया वि बहुज्जमेण पुरिसाणं ।
जायइ अणत्थहेऊ रयनेउरपवरमल्लुव्व ॥८४॥
"विणओवयार माणस्स भंजणा पूयणा गुरुजणस्स ।
तित्थयराणं आणा सुयधम्माराहणा किरिया ॥८५॥"
एए छच्चेव गुणा साहूणं वंदणे पुण हवंति ।
सग्गाऽपवग्गसुक्खं पएसिराउव्व लहइ जणो ॥८६॥
एगो जाणइ भासइ बहुयपयं किंतु एगमुस्सुत्तं ।
एगो एगंतं पि हु सुद्धं जह छलुय मासतुसो ॥८७॥
एगे उस्सुयवयणे जंपिए जं हवेइ बहु पावं ।
तं सयजीहो वि नरो न तीरए कहिउ वासंसए ॥८८॥
पढममिह मुसावायं दिट्ठीरागं तहेव मिच्छत्तं ।
आणाभंगं माणं परओ माया वि मेरुसमा ॥८९॥
सम्मत्तचरणभेओ तस्स य वयणेण होइ संघम्मि ।
कलहो वि तओ जायइ अप्पा उ अणंतसंसारी ॥९०॥
जे पुण पढंति सुत्तं छज्जीवणियाओ सावया उवरिं ।
सो तेसिमणायारो चउद्दसपुव्वीहिं जं भणियं ॥९१॥
सिक्खावियं साहुविहा उववायगई ठिई कसाया य ।
बंधता वेयंता पडिवज्जाइक्कमे पंच ॥९२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छज्जीवणिया उवरिं भणंति के वि कम्मरोगिणो सुत्तं ।
अप्पत्थ अंबरसलुद्धनिवमिव तं तेसिऽणत्थकरं ॥९३॥
देवे गुरुम्मि संघे भत्तीए सासणम्मि जं महिमं ।
कीरइ सो आयारो चउत्थठाणंम्मि सड्ढाणं ॥९४॥
वज्जिज्जा उड्डाहं अन्नेसिं हि वि सावयाण किं चुज्जं ।
चिंतइ पुण उड्डाहं सासणे हुज्ज सा कहवि ॥९५॥
खुद्दत्तणपरिहरणं परोवयारे तहेव आउत्तो ।
अरिहंताई एसो नेयव्वो पंचमो पुरिसो ॥९५॥
जइ छत्तीस गुणच्चिय गुरुणो ताइ वीस गुणजुत्ता(?) ।
गिहिणो वि हु जोइज्जा इयव[य?]णाओ परिनिसेहो ॥९६॥
जत्थ य छत्तीस गुणा मिलिया लब्भंति नेय गच्छम्मि ।
दोहिं चेव गुणेहिं सो वि पमाणीकओ होई ॥९७॥
जइ गच्छम्मि सुकज्जे सारणा वारणा अकज्जम्मि ।
ता ववहारनएणं ववहाररउ च्चिय सुसड्ढो ॥९८॥
एएणं भणिएणं गुरुभत्ती होइ परुवयारं च ।
ता एएसिं दुण्ह वि मा हुज्जा कह वि मह विरहो ॥९९॥
केई उवएसमिमं सोउं दुम्मंति सावया हियए ।
तं अन्नाणं जम्हा करणिज्जमिणं तु सड्ढाणं ॥१००॥
सिरिवीरसासणे सत्त निन्हवा आसि जे पुरा तेसिं ।
चउरो सड्ढेहिं चिय विबोहिया पवरजुत्तीहिं ॥१०१॥
इत्थ य जं पुण भणिए उस्सुयवयणं हविज्ज जइ कहवि ।
सोहिंतु तं बहुसुया मह उवरिमणुग्गहं काउं ॥१०२॥
जिणपवयणस्स सारं संगहिऊणं गुरूवएसेण ।
इय **सीधरेण** रइयं नंदउ **गुरुठावणासयगं** ॥१०३॥

इथि श्रीगुरुस्थापनाशतकसूत्रं समाप्तम् ॥

यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया ।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥

लि० **रत्नभद्रेन** ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पादमूर्त्तिमयं स्तोत्रपञ्चकम्

अमृत पटेलः

परमपूज्य काव्यमर्मज्ञ विद्वद्वर्य मुनिवर श्रीधुरन्धरविजयजी पासेथी प्राप्त थयेल हस्तप्रतोनी झेरोक्ष कोपीने आधारे प्रस्तुत पादपूर्ति स्तोत्रोनुं सम्पादन थयुं छे. तेमां रघुवंश महाकाव्य, भक्तामरस्तोत्र, "संसारदावा०" स्तुति तथा "आनन्दानम्र"० स्तुतिनां अलग अलग चरणनी पूर्तिरूपे आ स्तोत्रो रचायां छे. प्रस्तुत स्तोत्रोना उपजीव्य साहित्यना ऐतिहासिक क्रमने मुख्य मानीने, सम्पादनमां-सौ प्रथम रघुवंशपादपूर्तिरूप (१) श्री ऋषभदेव स्तोत्र (२) श्रीवीतरागस्तोत्र, (३) भक्तामर स्तोत्रनां प्रथमपादनी पूर्तिरूप श्री ऋषभदेवस्तोत्र (४) 'संसारदावा'. स्तुतिनी पादपूर्तिरूप महावीरजिनस्तोत्र (५) 'आनन्दानम्र'. स्तुतिनी पादपूर्तिरूप श्रीशान्तिजिन स्तोत्र-क्रम राख्यो छे. परंतु पादपूर्तिकारोना समयानुसारे नहीं.

प्रतिपरिचय - पांचेय स्तोत्रो लालभाई दलपतभाई भारतीय विद्यामन्दिर अमदावादनां हस्तप्रतभण्डारनी हस्तप्रतोनी झेरोक्षकोपीओ रूपे छे. 'रघुवंशपादपूर्तिस्तोत्रो (१,२)नी ह.प्र. नंबर-ला.द.भे.सू. २२२५६ छे. ते पंचपाठ छे, (३) भक्ता. पा. स्तोत्रनी ह.प्र.-ला.द.भे.सू. ३००५० छे. अक्षर सुवाच्य अने सुन्दर छे. (४) संसारदावा० पा. स्तोत्रनी ह.प्र. ला.द. भे. सू ४१-१० छे. पं. दानसारगणिअे वि.सं. १५६३मां लखी छे. (५) 'आनन्दानम्र' पा. स्तोत्रनी ह.प्र.-ला.द. भे.सू. २९९९७ छे. बधी प्रतोनां बे-बे पत्रो छे.

पांचमांथी मात्र 'संसारदावा[१]' पादपूर्तिस्तोत्रनो ज उल्लेख मळे छे. अने ते पण अछडतो ज. बाकीनां स्तोत्रोनो उल्लेख मळतो नथी. सम्पादनमां भक्ता पा. स्तोत्रनी टिप्पणी जरूर मुजब आपी छे.

रघुवंश पा.स्तोत्रमां प्रत्येक पाद पछी ( )मां रघुवंशना सर्ग-श्लोक अने चरणनो अंक शोधीने अंग्रेजीमां आपेल छे, परंतु (१) ऋषभ देवस्तोत्रमां १८मा पद्यमां अने (२) वीतरागस्तोत्रमां २जा पद्यमां Bनुं स्थान मळ्युं नथी.

स्तोत्र/स्तोत्रकार-रघुवंश महाकाव्य बधा सर्गमांथी भिन्न भिन्न पद्योनां बे-बे चरणो लईने पादपूर्तिरूप ऋषभदेव स्तोत्र अने एज महाकाव्यनां प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्गनां भिन्न-भिन्न पद्योमांथी त्रण त्रण चरणो लईने श्रीवीतरागस्तोत्रनी रचना थई छे. तेमां रघुवंशनां ते ते पदोनां वर्ण्य विषयने बदले श्रीऋषभदेव तथा श्रीवीतरागपरमात्मानां सन्दर्भमां अर्थघटन अवचूरि द्वारा रजू थयेल छे. स्तोत्रकार (श्री संघहर्ष-धर्मसिंह शिष्य) मुनिराज श्रीरत्नसिंह (१८मो विक्रमशतक पूर्वार्ध) पादपूर्तिकार तरीके प्रस्थापित छे. तेमणे भक्तामरस्तोत्रनां चतुर्थ चरणने आधारे "प्राणप्रियं नृपसुतः"थी शरु थतुं नेमिभक्तामर (लेखन संवत् [२]१७३०)नी रचना करी छे.

भक्तामरस्तोत्र (विक्रम ७मो शतक)ना प्रथमचरणनी पादपूर्तिरूप श्रीऋषभदेवस्तोत्र, भक्ता.पा.स्तोत्रो (२४)[३]मां सम्भवतः प्राचीनतम छे. कारण के विक्रमसंवत् १६८०मां लिपिकृत 'भक्ता.पा.स्तोत्र जे समयसुन्दरकृत छे, तेनो ज भक्ता.पा.स्तोत्रोमां सौथी प्रथम उल्लेख छे. ज्यारे प्रस्तुत भक्ता.पा.स्तोत्रना कर्ता पं. महीसागर गणिनो समय विक्रमना १६मा शतकना पूर्वार्धनो छे. प्रस्तुत स्तोत्रमां अन्तिम पद्यमां तपा. लक्ष्मीसागरसूरिनो उल्लेख छे, ते (वि.सं. १४६४-१५४१) प्रभावक आचार्य हता. अेमणे ६ वर्षनी लघुवयमां वि.सं. १४७०-उदयपुरमां मुनिसुन्दरसूरि पासे प्रव्रज्या[४] स्वीकारी हती. लक्ष्मीसागरसूरि-सन्तानीय सोमजयसूरिअे (प्रायः १५२५-१५३३) अमदावादमां महीसमुद्र तथा लब्धिसमुद्र, अमरनन्दि अने जिनमाणिक्यने वाचकपद आप्युं हतुं, पण्डित महीसमुद्र पण्डितपदनी प्राप्ति पछी स्तोत्रनी रचना करी हशे.

संसारदावा० पा.स्तोत्र अने 'आनन्दानम्र०' पा.स्तोत्रनां कर्ता ज्ञानसागर-सूरि छे. बे ज्ञानसागरसूरिनी माहिती उपलब्ध छे. (१) तपा. देवसुन्दरसूरिशिष्य (२) बृ.त. रत्नसिंहसूरिशिष्य.

(१) चन्द्रगच्छीय सोमतिलकसूरि-शिष्य देवसुन्दरसूरिना ज्ञानसागरसूरि शिष्य हता. ज्ञानसागरसूरिअे वि.सं.१४४०मां आवश्यक अवचूर्णि, १४४१मां उत्तराध्ययन अवचूरि अने ओघनिर्युक्ति अवचूर्णिनी रचना करी छे. तथा मुनिसुव्रतस्तव, घनौघ नवखण्डपार्श्वनाथस्तवन वगेरे स्तोत्रोनी पण रचना करी छे.

(२) सैद्धान्तिक मुनिचन्द्रसूरिना शिष्य बृ.त.रत्नसिंहसूरिना शिष्य ज्ञानसागरसूरिअे वि.सं. १५१७७[६]मां स्तम्भतीर्थमां विमलनाथचरित्रनी रचना करी छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवसुन्दरसूरि अने रत्नसिंहसूरिनो शिष्यगण विद्वान छे. बन्नेनो समय जोके लगभग समान शतकमां छे, परंतु प्रस्तुत स्तोत्रना कर्ता ज्ञानसागरसूरि अे देवसुन्दरसूरिनां शिष्य होवा वधु सम्भव छे. कारण के रत्नसिंह-शिष्य करतां देवसुन्दरसूरि-शिष्य वधु प्राचीन छे. तथा स्तोत्र, अवचूर्णि वगेरे ग्रन्थो एमनी रचनाओ छे. रत्नसिंहसूरिशिष्य ज्ञानसागरसूरिजीना नामे मात्र विमलनाथ चरित्र छे. छतां 'विमलनाथ चरित्र' जोईने निर्णय करवो योग्य छे.

संसारदावा.अने वीतरागस्तोत्र आ बन्ने स्तोत्रोमां मात्र कर्तानां सांकेतिकनामो - 'ज्ञानाम्भःसागराभः' तथा 'श्रीज्ञानसिन्धुः' छे. साक्षात् नामो नथी अने गुरुनाम पण नथी. तथा बन्ने स्तोत्रोना कर्ता कोण ? एक ज ज्ञानसागरसूरि के अलग अलग ज्ञानसागरसूरि ? आ बाबतमां बन्ने स्तोत्रोना आन्तरसम्बन्ध खास करीने स्रग्धराछन्दना पद्यमां केटलीक समानता बन्ने स्तोत्रोना कर्ता एक ज होवा विषे संकेत करे छे. जेमके बन्ने स्तोत्रोमां रचना प्रौढ छे. तथा संसार०पा.स्तोत्रनुं १३मुं पद्य तथा आनन्दा०पा.स्तोत्रनुं १५मुं पद्य, संसार०पा.स्तोत्रनुं १४ मुं पद्य तथा आनन्दा०पा.स्तोत्रनुं ४थुं पद्य, रचनानी केटलीक समानता धरावे छे. पोतानां उपजीव्य मुजब 'आनन्दा' पा.स्तोत्रमां ओजसगुणनी प्रौढि छे. तो 'संसारदावा'. पा. स्तोत्रमां प्रासादिकता छे. बन्नेमां तीर्थंकरनां शरीरनी उंचाई माटे एक ज शब्द 'प्रमिततनुः' छे.

लाञ्छन माटे पण 'एक ज शब्द 'अङ्कः' छे, अन्तिम पद्योमां एवं शब्द छे, पोतानुं नाम संकेतमां अपायुं छे. माटे बन्ने स्तोत्रोना कर्ता एक ज होवा वधु सम्भव छे. अने ते देवसुन्दरसूरिशिष्य होवा जोईअे.

—X—

टिप्पणी :

१. (४) 'संसारदावा. पूर्ति- आना कर्ता ज्ञानसागर छे' (ही.र.कापडिया जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास. खंड २, पृष्ठ २५८, सम्पा. आ. श्री मुनिचन्द्र सूरिजी ई.स. २००४)

२. (४) नेमिभक्तामर, एजन, पृ. २६४

३. भक्तामरपादपूर्तिरूप काव्यो, एजन, पृ. २५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. गुरुगुणरत्नाकर, जै.साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, मो.द.देसाई सं. आ.श्री मुनिचन्द्रसूरि, ई.स. २००६, पेरा ७ मो, पृ. ३२७

५. "इति श्रीऋषभदेवस्तोत्रं श्री पण्डितमहीसमुद्रगणिपादविरचितम्" ला.द. भे. सू. ३००५० नी झेरोक्ष कोपी.

७. स्तम्भतीर्थमां शाणराजे वि.सं. १५०८ मां विमलजिनप्रासाद बंधाव्यो. श्रीरत्नसिंह सूरिए प्रतिष्ठा करावी. वि.सं. १५१७ मां शाणराजे विनंती करवाथी विमलनाथ चरित्रनी रचना करी-विमलनाथ चरित्र भाषांतर, मो.द. देसाई, जै.सा.नो संक्षिप्त इतिहास सं. आ.श्री मुनिचन्द्रसूरि. ई.स. २००६, पेरा ७१९.

रघुवंशपदद्वयसमस्यानिबद्धं
युगादिजिनस्तवनम्, तदवचूरिश्च

[1]अथाभ्यर्च्य [2]विधातारं, [3]शर्मणस्त्वत्पदाम्बुजम् । [A 1-25-1]
स्निग्धग[4]म्भीरनिर्घोषं रचयामि तव स्तवम् ॥१॥ [B 1-35-2)
अथः[5] [6]प्रजानामधिपः प्रभाते । [A 2-1-1]
यस्ते सपर्यां विधिवत् तनोति ॥
एका[7]तपत्रं जगतः प्रभुत्वं
प्राप्नोत्यावद्भुतभाग्यसिन्धुः(?) ॥२॥
निदा[8]नमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्तते- [A 3-1-1]
र्यस्त्वां नयेद् दृष्टिपथं गरिष्ठधीः ॥
[9]दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं [B 3-8-1]
श्रेयो निवासं विदधाति तद्गृहे ॥३॥
[10]स्तुत्यं स्तुतिभि[11]रर्थ्याभि-र्यस्त्वां स्तौति प्रशस्तगीः ॥ [A 4-6-3]
स हि सर्वस्य लोकस्य मान्यतामेति मानवः ॥४॥ [B 4-8-1]
[13]कल्येन वाचा मनसा च शश्वत् [A 4-4-1]
प्रभोरुपास्तिं तव यस्तनोति ॥
[14]कालोपपन्नातिथिभागधेयं
तन्मन्यिरे न क्षयमेति पृक्[15]तम् ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर[16]ार्ध्यवर्णा[17]स्तरणोपपन्नं [A 6-4-1]
न के श्रयन्ते भविनो भवन्तम् ॥
तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं [B 6-69-1]
यदीशो[18]ऽहं जिन ! का गतिर्मे(?) ॥६॥
[19]उद्भासितं मङ्गलसंविधाभिः [A 7-16-3]
स्वर्गं समासाद्य सुखानि भुङ्क्ते ॥
महार्हसिंहासनसंस्थितोऽसौ [B 7-18-1]
क्रमाच्छिवं याति तवार्चनेन ॥७॥
अ[20]नपायपदोपलब्धये [A 8-17-1]
हृदा(दि) ये त्वां दधते पुरा[21]विदः ॥
भगवन् ! प[22]रवानयं जनो [B 8-81-2]
भवभोगैकरतिः करोमि किम् ॥८॥
प्रौढप्रियानयनविभ्रमचेष्टितानि [A 9-58-4]
ध्यानानि चेतसि तवापि पुरःस्थितेन ॥
प्रो[23]वाच[24] ! कोशल[25]पतिप्रथमापराधः [B 1-19-4]
क्षन्तव्य एष करुणाम्बुनिधिर्यतोऽसि ॥९॥
किञ्चि[26]दूनमनूनर्द्धे ! स्वामिन्नद्यापि वर्त्तते ॥ [A 10-1-3]
उदधेरिव रत्नानि त्रीणि[27] प्राप्तानि यत् प्रभोः ॥१०॥ [B 10-30-7]
[28]गन्धवद् रुधिरचन्दनोक्षितां [A 11-20-3]
मूर्तिमीश ! तव पश्यतां नृणाम् ॥
पक्ष्मपातमपि वञ्चनां मनो [B 11-36-4]
मन्यते नलि[29]ननेत्र ! नेत्रयोः ॥११॥
सा पौरान् पौरकान्तस्य पुनाति तव गीरियम् ॥ [A 12-3-3]
नभो-नभ[30]स्ययोर्वृष्टिं या जिगाय त्वदीरिता ॥१२॥ [B 12-29-3]
से[31]वाविचक्षणहरीश्वर ! दत्तहस्त !
श्रेयोऽर्पणे सुकृति[32]नां शरणं श्रये ते ॥
इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य [B 13-70-1]
तुभ्यं विभो ! परमहं नु[33] भजामि किञ्चित् ॥१३॥
वि[34]पाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः [A 14-62-4]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वकर्मणां शर्मद ! किं करोमि ॥
सम्पत्स्यते ते मनसः प्रसादो [B 14-76-4]
यदा तदा सिद्धिसुखं न दूरे ॥१४॥
कृतशीतापरित्यागस्तापोऽपि[35] न विरागवान् ॥ [A 15-1-1]
आदिष्टवर्त्मा मुनिभिः कदा त्वच्चरणं श्रये ॥१५॥ [B 15-10-1]
पुरः परा[36]ध्य प्रतिमाऽगृहा[37]या [A 16-39-2]
स्थितस्य याते मम नाथ ! तुष्टिः ॥
सा मन्दु[38]रा संश्रयिभिस्तुरङ्गै-
र्गजैर्नवा वारिविहारवद्भिः ॥१६॥
दुरितं दर्शनेन घ्नन् वन्दनेनेहितप्रदः ॥ [A 17-74-1]
दूरापवर्जितच्छत्रैः सुरेन्द्रैस्त्वमुपास्यसे ॥१७॥ [B 17-19-1]
दमान्वितः पद्मदलाभदृष्टि- [A ?]
र्गुणाम्बुनिधिर्बुद्धिनिधिर्विधिज्ञः ॥
पतिः पृथिव्याः कुलकैरवेन्दु- [B ?]
र्युगादिनाथो जयताज्जिनेन्द्रः ॥१८॥
एवमिन्द्रियसुखानि निर्विश- [19-47-1]
न्नप्यधीश्वरनुतिं तनोति यः ॥
तं प्रमत्तमपि न प्रभा[39]वतो [B 19-48-3]
दुर्गतिः स्पृशति सा[40]तमेति च ॥१९॥
श्रीसङ्घहर्षसुविनेय[क]**धर्मसिंह**-
पादारविन्दमधुलिण्**मुनिरत्नसिंह**ः ।
श्रीम[41]द्युगादिजिनवर्णनवर्ण्यवर्णं
स्तोत्रं चकार **रघुवंश**पदप्रधानम् ॥२०॥

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रघुवंशपदत्रयसमस्यानिबद्धं

श्रीवीतरागस्तवनम्

रघुवंशादिसर्गस्य पदत्रयसमस्यया ।
कुर्वे स्तोत्रं जगद्भर्तुः समीहितफलप्रदम् ॥१॥
लो[1]कान्तरसुखं पुण्यं स्मृत्वा सपदि सत्वरः । [A 1-69-1]
A B
[B ?]
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं वितनोमि विभोः स्तवम् ॥२॥ [C 1-36-1]
C

भीम[2]कान्तैर्नृप[3] ! गुणैस्तनु[4]वाग्विभवोऽपि सन् । [A 1-16-1
A B
B 1-9-2]
आ[5]त्मकर्मक्षमं देहं स्तवं कृत्वा पुनाम्यहम् ॥३॥ [C 1-13-3]
C

अनिन्द्या नन्दिनी नाम[6] वागर्थप्रतिपत्तये । [A 1-82-3
A B
B 1-1-2]
तव मन्त्रकृ[8]तो मन्त्रै-र्दुःसाधैरलमेव च ॥४॥ [A 1-61-1]
C

सो[9]हमिज्याविशुद्धात्मा प्रार्थनासिद्धिशंसिनः । [A 1-68-1]
A B
B 1-42-3]
तितीर्षुर्दुस्तरं मोदा-[10]पगमात् ते श्रये क्रमौ ॥५॥ [C 1-2-3]
C

आ[12]समुद्रक्षितीशानां माननीयो मनीषिणाम् । [A 1-5-1]
A B
[B 1-12-2]
अदू[13]रवर्त्तिनीं सिद्धिं विधेहि भगवन् ! मम ॥६॥ [A 1-87-1]
C

सरसीष्वरविन्दानां यथा[15] काल[17]प्रबोधिनाम् । [A 1-43-1]
A C
B 1-6-4]
सो[14]हमाजन्म[16]शुद्धानां गम्यो[17]ऽसि [18]ज्ञानभास्करः ॥७॥ [C 1-5-1]
C

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[20] सर्वातिरिक्तसारेण विद्यानां पारदृश्वनः । [A 1-42-2]
A C
B 1-23-2]
आदेशं देशकालज्ञः मौलौ बिभ्रति ते प्रभो ! ॥८॥ [C 1-92-3]
C

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ द्वयमेवार्थसाधनम् । [A 1-22-1]
A C
B 1-19-2]
अनुभावविशेषात् तु त्वग्ग्रे वास्त्यपरे नहि[21] ?॥९॥ [A 1-37-3]
C

आकारसदृशप्रज्ञ परत्रेह च शर्मणे । [A 1-15-1]
A B
B 1-69-4]
उपस्थितेयं कल्या[22]णी-भक्तिर्मनसि ते सताम् ॥१०॥ [A 1-87-3]
C

तया[23] हीनं विधातर्मा प्रारम्भसदृशोदयम् । [A 1-70-1]
A B
B 1-15-4]
असह्यपीडं भगवन् ! नवकर्मकदर्थितम् ॥११॥ [C 1-11-1]
C

नमामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी ॥ [A 1-91-1]
A B
B 1-65-2]
अनाकृष्टस्य विषयैर्बोधिर्मेऽस्तु भवे भवे ॥१२॥ [A 1-23-1]
C

इत्याप्रसादा[24]दस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव । [A 1-91-1]
A B
B 1-91-2]
अविघ्नमस्तु ते भूयाः रे जीव ! शिवसौख्यभाक् ॥१३॥ [C 1-92-3]
C

श्री**सङ्घहर्ष** सुविनेयक **धर्मसिंह**-
पादारविन्दमधुलिण्मुनि**रत्नसिंहः** ।
श्रीमज्जिनेन्द्रगुणवर्णनवर्ण्यवर्णं
स्तोत्रं चकार **रघुवंश**पदप्रधानम् ॥१४॥

इति श्रीरघुवंशपदत्रयसमस्यानिबद्धं श्रीवीतरागस्तवनम् ॥

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महीसमुद्रगणिरचितं

'भक्तामर'पादपूर्तिमयं

आदिजिनस्तोत्रम्

भक्तामरप्रभुशिरोमणिमौलिमाला-
मन्दारसारमकरन्दकदम्बकार्च्यौ ।
नाभेयदेव ! [१]भवतो भवदीयपादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥
यस्य स्तुतिर्मतिमतामपि गोचरः स्या-
न्नो योगिनां गुणमहागरिमाऽमराद्रेः ॥
शालीनताऽतिमहतीयमहो यदेषा
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥
त्वामेव देवमपसन्तमसं श्रयन्ते
सन्तः कषायकलुषानपरानुपेक्ष्य ॥
काचं विमुच्य मणिमात्महिताय विज्ञ-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥
शक्नोति नो तव जिन! स्तवनाय धीर-
धीमान् पुमान् क इह मन्दमतिस्तु मादृग् ॥
पद्भ्यां हि गन्तुमगशृङ्गमिवाङ्ग[२] ! पङ्गुः
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥
देव ! त्वदेकशरणं करुणागुणाब्धे !
मामीश ! मोचय महारिपुमोहरुद्धम् ॥
कष्टे कलिव्यसनतः [३]सविता समर्थो
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥
ग्रन्थिं विभिद्य जिन ! मोहमयं बभूव
त्वद्दर्शने रुचिरसौ शिवसौख्यहेतुः ॥
मूलेषु यत् परिणमत्युदकं घनस्य
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाह्यान्तरारिबलमप्यखिलं विशालं
त्वद्ध्यानसन्निधिविधायिधियामधीश ! ॥
भूरिप्रभाव ! भजते विशरारुभावं
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥
त्वत्पादपङ्कजयुगप्रणिधानयोगा-
न्नाभेय ! नाशमुपयाति महान्त्यघानि ॥
वातोद्धुतः किल कियच्चिरमब्जपत्रे
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥
लक्ष्मीविलासवसतिं विदुरा विदन्तु
नामैव ते स्मरणतोऽस्य यदाप्यते श्रीः ॥
मिथ्येन्दुमण्डलमथातपवारणं वा
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥९॥
त्वांमष्टकर्ममलमुक्तमुपास्य नष्ट-
कर्माष्टको हि भजतीति भजे भवन्तम् ॥
किं सर्वतोमुखसुखैषिभिरिष्यते स
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥
श्रोतुं सुराः समुपयन्ति गिरं गुरो ! ते
देवेश ! दिव्यमपि गीतरसं निरस्य ॥
स्वाधीनसौधरससारसराः पिपासुः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥
उत्पाद्यते कथमधीश ! तवात्मतत्त्व-
मर्वाग्दृशामनुपमानमतीन्द्रियं च ॥
आलोकितं क्वचिदपि श्रुतपूर्वकं वा
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥१२॥
वागौचितीं व्रजति सा किमु कोविदानां
यत् ते त्वदीययशसामतिनिर्मलानाम् ॥
नेतस्! तदप्युपमयन्ति शशाङ्कबिम्बं
यद् वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोधं निरुध्य परिमथ्य मदं निहत्य
मोहं प्रमुष्य निखिलानपि शेषदोषान् ॥
ये त्वां श्रिताः शिवपथे पथिका जिनेन्द्र !
कस्तान्निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ॥१४॥
कर्मक्षयोत्थमिह वीर्यमनन्तमर्हन् !
यादृक् तव त्रिभुवनेऽपि परस्य नेदृक् ॥
केनाप्यपश्चिमजिनेश्वरमन्तरेण
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥
पूर्णः शशी निशि दिवा च दिवाकरः स्यात्
गेहे तथा गृहमणीति जगत्प्रतीतः ॥
दीपाः कियद् वियति दीप्तिकृतस्ततस्तु
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥
उद्बोधयन् [९]कुमुदमभ्युदयेन नाना-
[१०]पद्मालिकां मुकुलयंश्च तमोग्रहस्य ॥
ग्रासं [११]विधंश्च(?) दधदातपवारणानि
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥
यन्नित्यमस्तरहितं परिवर्धमान-
तेजश्च नैककलमुज्ज्वलमप्यखण्डम् ॥
जाग्रद् यशस्तव जिगाय जिनेन्द्रचन्द्र !
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥
यद्यस्ति नो भवति भक्तिरसस्तदानीं
न स्युस्सुदुस्तपतपांस्यपि सत्फलानि ॥
सञ्जायते सपदि बीजमृते[१३] हि सस्य-
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९॥
श्रुत्वा श्रुतोपनिषदं परदर्शनानां
त्व[च्छा]शने सुकृतिनः कति नो रमन्ते ॥
विद्वन्मनो मणिषु मोहमुपैति यद्वन्-
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं विश्वमोहनमिमामुत कार्मणं ते
मूर्त्तिं किमुत्तमवशीकरणं वदामः ॥
नेतर्न यत् सकृदपीक्षितपूर्विणां तां
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेपि ॥२१॥
देवाः परेऽपि ददते दिविषत्सुखानि
शैवं त्वनन्तसुखमर्पयसि त्वमेकः ॥
कुर्यात् प्रतीच्यपि कवेरुदयं रवेस्तु
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥
ज्ञानक्रियाद्वयमयं यमपायमुक्त-
माख्यः[१४] सुखाश्रय ! महोदयमार्गमीश ः
सर्वात्मसंयमवतां सुगमं वितानं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥२३॥
त्वां शब्द-रूप-रस-गन्धगुणव्यपेतं
व्याघातवर्जितममूर्त्तमसङ्गमेकम् ॥
नानाभिधाभवदुपाधिभिदं न के के
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥
विश्वे विभो ! परममङ्गलमङ्गिनां त्वा-
मेकः शरण्यशरणं शरणार्थिनां च ॥
श्रीवीतराग ! विगतान्तरवैरिवार !
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥
शक्तिर्न मे तपसि नापि जपे पटुत्वं
ध्याने न धैर्यममलं च मनोऽपि नो मे ॥
किं त्वेकमेव भवतारणकारि कुर्वे
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥
नाद्यापि मे मतिरुपैति तवोपदेशे
प्रीतिं प्रयाति विषयेषु न यद् विरागम् ॥
मन्ये मया क्वचन पूर्वभवेषु तत् त्वं
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकस्थितिप्रथितपातकपार्श्ववर्त्ती(र्त्ति-)
नि:शेषकर्मपटलापगमात् तवात्मा ॥
धत्ते महोऽधिकमहोभ्रमदभ्रमुक्तं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्त्ति ॥२८॥
सिंहासने स्थितवतस्तव हेमरत्न-
रम्ये स्फुरत्युरु विशेषवतीव दीप्ति: ॥
प्रात: प्रभा प्रचुरधातुरसैरुपेता
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मे: ॥२९॥
नेतर्विभूषति भृशं भवदंसदेशं
हेमोपमं मरकतद्युतिकाऽलकाऽऽली ॥
कल्पद्रुकाननतति: परित: प्रकाम-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥
दोषत्रयीविजयिनं त्रिसुपर्वसाल-
संस्थं त्रिकालविदमीश ! भवन्तमाशु ॥
रत्नत्रयीगुरुगुणा नृपतित्रिशक्ति:
प्रख्यापयत् त्रिजगत: परमेश्वरत्वम् ॥३१॥
अत्रोचित: कविकृतोऽस्त्युपमोपमेय-
भावो न वेदमवधारयितुं धरेयम् ॥
यत्रादधासि चरणौ तदध: सुवर्ण-
पद्मानि तत्र बिबुधा: परिकल्पयन्ति ॥३२॥
तीर्थाधिपत्यपदवी भुवनोपकार-
सारा यथा तव तथा न भवेत् परेषाम् ॥
सौख्यावह: सवितुरस्त्युदयस्तु यादृक्
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशितोऽपि ॥३३॥
दुर्वार वैरि-करि-केसरि-वारि-मारि-
चौरोरगप्रभृतिसम्भवमाभवं ते ।
नि:शेषभीतिहरणौ चरणौ शरण्यौ
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत् तिष्ठति ग्रहगणस्तव पादपीठे
सेवापरो मुकुलिताग्रकरः स्वमौलौ ।
क्रूरोऽपि युक्तमिह स प्रतिकूलभावा-
न्नाऽऽक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३५॥
भूयो भवभ्रमभवं श्रममङ्गभाजां
तृष्णाभवं परमनिर्वृतिनाशनं च ॥
अन्तः परीतमुपतापमलं मलं च
त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥३६॥
नैवाहितः स्फुरति कोपि परोपतापो
मूर्च्छा च नो सविषया प्रकृताऽपकृत्या ।
नो भोगिभङ्गिजनिता विकृतिश्च तस्य
त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥३७॥
कल्याणकेषु भगवन् ! भवतः प्रभूतो-
द्भूतप्रभावविभवैर्यदि नारकाणाम् ॥
नश्यत्यशेषमसुखं तदिहोच्यते किं
त्वत्कीर्त्तनात् तम इवाशु भिदामुपैति ॥३८॥
सत्पुण्यचञ्चुचरिता गुणिपक्षदक्षाः
प्रीत्या परागरसरङ्गभृतो मरालीः ॥
गर्जद्गुणैः परमहंसपदं पृणन्त-
स्त्वद्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥३९॥
रुद्धा विरोधिभिरधीश ! धृती धरेशैः
बद्धाश्च बन्धनशतैश्चलिताश्च चौरैः ॥
प्राप्ता परं व्यसनमप्यभयं पदं हि
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४०॥
रूपं निरूपयितुमीश ! तदीशते ते
केऽनुत्तरा जगदनुत्तररूपिणोऽपि ॥
यस्याग्रतोऽञ्जनमिवापगताङ्गभासो-
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वन्नाममन्त्रमिव नाथ ! पवित्रपात्र -
मत्र श्रियामसममुक्तिकरं स्मरन्तः ॥
बाह्यान्तरद्विविधबन्धभृतोऽपि बाढं
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४२॥
तं सर्वतोमुखमुपैति सुखं समग्र-
श्रीभिः समं शमितदुर्मतिदुःस्थताभिः ॥
मन्त्रं महान्तमिव तत्र नियन्त्रितात्मा
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४३॥
यस्ते स्तुतिं प्रथमतीर्थपते ! प्रथीयः-
पुण्योदयां प्रथयति प्रथमानभावः ॥
श्रीसूरसुन्दरमहामहसा लसन्तं
तं **मानतुङ्ग**मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४४॥
इत्थं श्रीजिननाभिनन्दनविभो(भु)र्भक्त्यात्तभक्तामर-
स्तोत्रान्त्यांह्रिसमस्यया स्तुतपदः, स्तुत्याल्पमत्या मया ॥
तत्त्वातत्त्वपथप्रकाशनरवेर्माहात्म्यमालालसल्-
लक्ष्मीसागरसार्व**सोमजयदः** स्तादाप्तदिव्यो रयः(रथः) ॥४५॥

इति श्रीऋषभदेवस्तोत्रं श्रीपण्डित-
महीसमुद्रगणिपादविरचितम् ॥छा।

★

श्रीज्ञानसागरसूरि विनिर्मितं
संसारदावा० पादपूर्त्तिमयं
महावीरस्तोत्रम् ।

कल्याणवल्लीवनवारिवाहं
श्रेयःपुरीसत्पथसार्थवाहम् ॥
हर्षप्रकर्षेण नुवामि वीरं
संसारदावानलदाहनीरम् ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभो ! जनास्ते जगति प्रधानाः
ये त्वां भजन्ते दलिताभिमानाः ।
सम्प्राप्तसंसारसमुद्रतीरं
सम्मोहधूलीहरणे समीरम् ॥२॥
केनाऽपि जिग्ये नहि मोह-भूपः
प्रकाममुद्दामतमःस्वरूपः ॥
विना भवन्तं भुवनैकवीरं
मायारसादारणसारसीरम् ॥३॥
सुवर्णसद्वर्णलसच्छरीरं
सिद्धार्थभूपालकुलाग्रकीरम् ।
औदार्य-धैर्यादिगुणैर्गभीरम्
नमामि वीरं गिरिसारधीरम् ॥४॥
अन्यां विहाय महिलां महिमाभिरामा
भेजे जिनेश ! भवता किल मुक्तिरामा ॥
कैवल्यनिर्मलरमासुषमानवेन
भावावनामसुरदानवमानवेन ॥५॥
सन्नाकिनायकनिकायशिरांसि यानि
ब्रह्मादिदैवतगणेन मनाग् नतानि ॥
त्वत्पादनीरजरजः स्पृहयन्ति तानि
चूलाविलोलकमलावलिमालितानि ॥६॥
तापापहा भविकभृङ्गविराजमाना
मूर्त्तिस्तव प्रवरकल्पलतोपमाना ॥
दत्ते जगत्त्रयपते ! सुमनःसमूहैः
सम्पूरिताभिमतलोकसमीहितानि ॥७॥
येषामधो नवसुवर्णसमुद्भवानि
सञ्चारयन्ति विबुधा नवपङ्कजानि ॥
भूपावकानि रजसा किल तावकानि
कामं नमामि जिनराज ! पदानि तानि ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तावत् तृष्णाकुलितमतयः पापतापोपगूढा
दुःखीयन्ते नवनवभव[वे]ग्रीष्मकाले कराले ॥
यावल्लोका घनमिव भवच्छासनं नो लभन्ते
बोधागाधं सुपदपदवीनीरपूराभिरामम् ॥९॥
पीयूषाभं तव सुवचनं वर्यमाधुर्ययुक्तं
स्वादं स्वादं विपुलहृदयक्षीरसिन्धोः समुत्थम् ॥
क्षारं नीरं कुसमयमयं कामयन्ते न भव्या
जीवा हिंसा विरललहरीसङ्गमागाहदेहम् ॥१०॥
निःपुण्यानां न सुलभमिह श्रीमदानन्दहेतुं
विज्ञैर्धन्यैस्तव जिनपते ! शास्त्ररूपं निधानम् ॥
चित्ताऽऽवासे लसदचलना निर्जिताऽमर्त्यभूभृच्-
चूलावेलं गुरुगममणीसङ्कुलं दूरपारम् ॥११॥
अव्याबाधारस्सपदि विबुधास्सच्चिदानन्दलीनाः
पुण्यापीना अजरममरं संश्रयं संश्रयन्ते ॥
यस्मात् पीत्वाऽसमशमसुधां तं जिनेन्द्र ! त्वदीयं
सारं वीरगमजलनिधिं सादरं साधु सेवे ॥१२॥
ये दुर्गाश्चोपसर्गा भवति कुमतिना सङ्गमे वा हतास्ते
तस्यापत् सङ्गमायाऽजनिषत तदनु ध्यानसन्धानहृष्टैः ॥
दैवैर्दिव्या समोदं तव शिरसि तदा पुष्पवृष्टिर्विचक्रे
आमूलालोलधूलीबहलपरिमलालीढलोलालिमाला ॥१३॥
शान्तं कान्तं नितान्तं निरुपमसुषमालाभवन्तं भवन्तं
दृष्ट्वा लीना स्वयं सा जिनवर! कमला चञ्चलापि स्वभावात् ।
विन्यस्ता शौरिणा या विधिसविधगता संस्थिता षट्पदाली
झङ्कारारावसाराऽमलदलकमलाऽऽगारभूमीनिवासे ॥१४॥
केचिद् गायन्ति देवाः प्रमदभरभृतो नाथ ! नृत्यन्ति केचित्
स्नाते जाते सुमेरौ त्वयि जनिसमये रत्नसिंहासनस्थे ॥
रम्यक्षौमावृताङ्गे मृदुतरचरणे भासुरस्फारमौलि-
च्छायासम्भारसारे वरकमलकरे तारहाराभिरामे ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंहाङ्कः सप्तहस्तप्रमिततनुरयं सम्पदः सर्वभव्याः
देया देया यदीयाननकमलभवा द्वादशाङ्गीमयाङ्गी ॥
दक्षो मोक्षोपयोगी वदति भगवतीं भारतीं नित्यमेवं
वाणीसन्दोहदेहे भवविरहवरं देहि मे देवि ! सारम् ॥१६॥
एवं देवाधिदेवः सदतिशयचयैः सर्वतः शोभमानः
काव्यैः 'संसारदावा' स्तुतिपदकलितैः कोविदैर्वर्ण्यमानः ॥
सद्ध्येयस्त्रैशलेयः स भवतु भविनां भूतये वर्धमानः
ज्ञानाम्भःसागराभः सकलसुखकरः श्रीजिनो वर्धमानः ॥१७॥

॥ इति महावीरस्तवनं पं. दानसारगणिना लिखितं सम्वत् १५६३ फाल्गुन शुदि १ ॥

★

श्रीज्ञानसागरसूरिविनिर्मितं

'आनन्दानम्र'.... पादपूर्त्तिरूपं श्रीशान्तिजिनस्तवनम् ।

[स्रग्धरावृत्तम्]

चञ्चच्चामीकराभप्रवरवरतनुद्योतिरुद्योतिताशः
श्रीशान्तिः शान्तिदाता स भवतु भविनां भाविनां तीर्थनाथः ।
यत्पादौ सप्रसादौ जगति नतवतामुल्लसन्ति[?]प्रभुता(प्रभुत्व)-
मानन्दानम्रकम्रत्रिदशपतिशिरःस्फारकोटीरकोटी ॥१॥
नौमि श्रीविश्वसेनक्षितिपतितनयं विश्वविश्वाधिपं तं
शिश्राय श्रेयसी यं स्वयमपि सुकृतादर्जिता चक्रिलक्ष्मीः ॥
भक्तिप्राग्भारभारप्रणमदविकलाक्षोणिभृन्मौलिमोलि-
प्रेङ्खन्माणिक्यमालाशुचिरुचिलहरीधौतपादारविन्दम् ॥२॥
भोगान् रोगानिवाहो(हे)र्विषमिव विषयान् शस्त्रिकावद् वरस्त्रीः
प्रौढं तत्याज राज्यं रज इव रभसा दूषणानीव भूषाः ॥
वन्दध्वं मुक्तिरामाविलसनमनसं तं जनास्त्यागिनं भो !
आद्यं तीर्थाधिराजं भुवनभवभृतां कर्ममर्मापहारम् ॥३॥
भीतो हर्यक्षभीतो वनदवदरतस्त्यक्तरङ्गः कुरङ्गो
दीनो लीनो यदीये सुचरणशरणे निर्भयं प्राप सौख्यम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोभावन्तं भवन्तं तमिह जिनपते ! सर्वजीवानवन्तं
वन्दे शत्रुञ्जयाख्यक्षितिधरकमलाकण्ठशृङ्गारहारम् ॥४॥
सिद्धान्तास्ते त्वदीया अपरमत अहो वादिवादे कृतान्ताः
श्रीशान्ते ! भान्ति शान्ता मधुरतरसुधास्वादतः श्रान्तिकान्ताः ।
सिंहायन्ते धरायां नखरचितमहाडम्बराः स्फूर्जयन्तो
माद्यन्मोहद्विपेन्द्रस्फुटकरटतटीपाटने पाटवं ये[ते] ॥५॥
विद्वद्वृन्दैरमेयास्त्रिभुवनमखिलं लङ्घयन्तः स्वशक्त्या
दोषारीणामजेयाः सकलसुरनराधीश्वरैश्चापि गेयाः ॥
सन्दोहास्त्वद्गुणानां विकटसुभटवद् भेजिरे सज्जयित्वं
बिभ्राणाश्शौर्यसारा रुचिरतररुचां भूषणायोचितानाम् ॥६॥
प्रोद्यत्कैवल्यलक्ष्मीविपुलकुचतटस्फारशृङ्गारकाराः
साराः पीयूषधाराधरबहलगलद्बिन्दुवृन्दानुकाराः ॥
त्वद्व्याहाराः सुहारा इव गुणनिचिता लोकमुद्योतयन्ते
सद्वृत्तानां शुचीनां प्रकटनपटवो मौक्तिकानां फलानाम् ॥७॥
पूर्वं यैस्तत्क[त्यक्त]गर्वं भवशुभविधिना विश्वमान्या त्वदाज्ञा
भावाऽऽविर्भूतहर्षप्रकरपुलकितौ(तं)पालिताक्षालिताद्या(घा) ॥
मुक्तौ रागादिमुक्ता असमसुखरताः कर्मकुम्भिप्रभेदे
तेऽमी कण्ठीरवाभा जगति जिनवरा विश्ववन्द्या जयन्ति ॥८॥
भोगो रोगोऽपि तेषां भवनमिव वनं हव्यवाहोऽम्बुवाहो
पूतायन्ते च भूताः स्थलमिव सलिलं दुर्जनाः सज्जनाऽऽभाः ॥
जप्तो यैः कण्ठपीठे लुठित इव भवन्नामजापस्त्रिसन्ध्यं
सद्बोधाऽवन्ध्यबीजं सुगतिपथरथः श्रीसमाकृष्टिविद्या ॥९॥
तेषामेषा विशेषाद् विषयविषभवा वासना भासते वा ।
धत्ते चित्ते निवासं विषमतममहामोहमिथ्यात्ववासः ॥
धर्मः शर्मप्रदस्ते श्रवणपटयुगैर्न श्रुतो विश्रुतो यैः
रागद्वेषाहिमन्त्रः स्मरदवदवथुः प्रावृषेण्याम्बुवारः ॥१०॥
केचिच्चारित्ररत्नं कति लघु विरतिं त्वद्विहारेण लब्ध्वा
लोकास्तत्त्वावलोकाद् बहुसुकृतधराः सम्मदादेवमाहुः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्मादस्मादृशानामुपलसमधियां धर्मिताऽभूदकस्मा-
ज्जीयाज्जैनागमोऽयं निबिडतमतमःस्तोमतिग्मांशुबिम्बम् ॥११॥
निःशङ्का वीतपङ्का यदि हृदि भवतां सच्चिदानन्दवाञ्छा
विज्ञाः सज्ज्ञातदृष्ट्या परिहरि(र)त तदाऽनल्पसङ्कल्पजालम् ।
सेवध्वं देवदेवं जिनवरमचिरानन्दनं सर्वदा यो
द्वीपः संसारसिन्धौ त्रिभुवनभवनज्ञेयवस्तुप्रदीपः ॥१२॥
सोऽपि स्वामिन् ! स्वभावात् सकृदपि भवतः पूजयन् पादपद्मं
प्राज्यं प्राप्नोति राज्यं निरुपमकमलां निर्मलां चाप(पि) कीर्त्तिम् ॥
विप्रो वा क्षत्रियो वा वणिगपि घटकृल्लोहकारोऽपि यद् वा
यः पूर्वं तन्तुवायः कृतसुकृतलवैर्दूरितः पूरितोऽघैः ॥१३॥
आरूढो रूपलक्ष्मीं गुणततिषु तथा प्रौढिमानं भवान् भोः !
पूर्वं प्रौढं त्रिलोकी-परिवृढ ! सुदृढं तीर्थकृत्कर्मबन्धात् ।
नृणां स्त्रीणां सुराणां नयनपथि यथा विंशतिस्थानकादि-
प्रत्याख्यानप्रभावादमरमृगदृशामातिथेयं प्रपेदे ॥१४॥
दुर्गं दुष्टोपसर्गं विदलयति सतामार्हतानां समूलं ।
लक्ष्मीमुख्यं च सौख्यं रचयति रुचिरं स्वीयचित्तानुकूलम् ॥
निर्वाणी यक्षिणीयं गरुड इति सुरः शासने ते मुनीनां
सेवाहेवाकशाली प्रथमजिनपदाम्भोजयोस्तीर्थरक्षः ॥१५॥
रङ्गद्गौराङ्गकान्तिर्विशदवृषगतिर्निष्कलङ्कं मृगाङ्कं
धत्ते नित्यं भवानीहितकरणरतो ब्रह्मचारिश्रितो यः ॥
सर्वज्ञः शान्तिनाथः प्रबलबहुलसद्दर्पकन्दर्पघाते
दक्षः श्रीयक्षराजः स भवतु भवतां विघ्नमर्दी कपर्दी ॥१६॥
एवं **श्रीज्ञानसिन्धुप्र**सरशशधरः सद्गुणौघैः गंभीर-
श्चत्वारिंशत्सुचापप्रमिततनुविभाभासुरो विश्वमित्रम् ।
श्रीशान्ते ! पीतकान्ते त्रिजगदभिमते चारुचिन्तामणिस्त्वं
ख्यातः शुद्धावदातः स्तुत इह मयका सम्पदां सद्म जीयाः ॥१७॥

इति श्रीशान्तिनाथस्तवनम् ।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवचूरि (१) - रघुवंशसमस्यास्तोत्रस्यादिमस्य

1 'अथ' इति स्तोत्रस्यारम्भे मङ्गलार्थमव्ययम् । 2 निष्पादकम् । 3 सुखस्य । 4 स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं यथा स्यात् तथा इति क्रियाविशेषणं भक्ति प्रागल्भ्यवशादुत्कृष्टतासूचकम् ॥१॥

5 'अथः' इति कर्तृविशेषणं, "थो मिथ्यावाचके श्रान्ते शोके च [(ऽथा]ऽरब्धवस्तुनि". [विश्वशम्भुकृतैकाक्षरनाममालिका ६४] इत्याद्येकाक्षराभिधानवाक्यात्, 'अथः सूनृतवाक्, एतेन धर्मित्वोक्तिः, अश्रान्तः इति पूजापरत्वोक्तिः, अशोकः इति हर्षोत्कर्षोक्तिः । एवं हि पूजा विधीयमाना। बहुफला भवति। 6 प्रजानामधिपः कुटम्बवान् पुत्र-पौत्रादिपरिकरपरिवृतः नृपतिरपि वा । 7 एकातपत्रमिति भूपतिपक्षे स्वल्पराज्यो राजा बहु राज्यं प्राप्नोति, अन्यत्र तीर्थकृच्चक्रिपदवीम् ॥२॥

B इक्ष्वाकुवंशस्य सन्ततेरत्रोत्पन्नत्वाद् हेतुभूतम् । 9 क्रमेणाधिकतरम् ॥३॥ 10 स्तुतियोग्यं, । 11 अर्थमुक्ताभिः । 12 तीर्थकृत्त्वमाप्नोति इत्यर्थः ॥४॥

13 त्रिकरणशुद्ध्या । 14 अर्थिप्राप्यं, कृपणस्य हि धनमर्थिनामप्राप्यं भवति, भगवदुपास्तिप्राप्तं धनं सत्पात्रसुप्राप्यं भवति । 15 पृक्तं धनं [अभिधान चिंतामणो" देवकाण्ड 192 तेम पद्ये 'पृक्थं' अस्ति] ॥५॥

16 परार्ध्याः प्रकृष्टाः वर्णा गुणा यशो वा येषां [वर्णाः... गुणे ॥ यशस्ताल० हैम. अनेकार्थसङ्ग्रह 154] । 17 संसाराम्भोधितरणार्थं प्राप्तं । 18 धर्मानुष्ठानपराङ्मुखः, त्वदुपास्तिरहितः ॥६॥

19 मङ्गलोपचारकलितम् ॥७॥

20 मोक्षपदप्राप्त्यर्थम् । 21 भूत-भावि-भावावबोधिनो महर्षयः, "पुरा-पूर्व-भविष्यार्थयोः" [-] इत्युक्तत्वात् । 22 भोगैकरतत्वात् तदायत्तः ॥८॥

23 प्रोवाच इति हे प्रोव ! हे अच ! प्रकर्षेण उः रक्षकः [रक्षार्थ वाचकावेतौ... वि-का ११]वो वदनं [-]यस्य सः प्रोवः, तस्य सम्बोधनम् - हे प्रोव ! । 24 अः चन्द्रः, चः चारुदर्शनः [तस्य सम्बोधनं] हे अच ! । 25 कौशलाः देशाः, तेषां पतयो राजानः, तेषां प्रथमः, "पढमराए व" [ ] इत्युक्तेः ॥९॥

26 अनूना-पूर्णा ऋद्धिर्यस्य स अनूनर्द्धिः, तस्य सम्बोधनम् । 27 ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणानि ॥१०॥

28 सुगन्धि रुधिरं कुङ्कुमं, चन्दनं श्रीखण्डः, ताभ्यां चर्चिताम् । 29

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे कमललोचन ! ॥११॥

30 श्रावण-भाद्रपदयोः ॥१२॥

31 परिचर्यापरायणा हरयो देवेन्द्रा धनिनश्च यस्य सः, तस्य सम्बोधनम् । 32 हे सुकृतिनां श्रेयोऽर्पणे दत्तहस्तः [इत्यन्वयः] । 33 नु इति वितर्के तुभ्यं प्रणम्य परमन्यं कञ्चिदपि देवं अहं न भजामि ॥१३॥

34 पूर्वोर्धार्जितदुःकर्मारिजृम्भितम् । 35 कृतः शीतस्य अपरित्यागो येन सः तत्परीषहसहत्वात् ॥१४॥

36 परार्ध्या प्रकृष्टा प्रतिमा आकृतिर्यस्य[सः, तस्य सम्बोधनम्] । 37 हे अगृह ! अनगार ! हे अय ! "योऽतिकुत्सने [योऽतिकुसिते-इति विश्व. नाममाला ९८] इत्यनेकार्थवचनात् । 38 वाजिशाला ॥१५॥

39 स्तुतिमाहात्म्यात् । 40 मोक्षसुखम् ॥१९॥

41 युगादिजिनवर्णनेन वर्ण्या वर्णनीया वर्णा अक्षराणि यत्र ॥२०॥

★

अवचूरि : (2) रघुवंशसमस्यास्तोत्रस्य द्वितीयस्य

1 परलोकेषु केन पुण्येन सुखं भवतीति विचार्य ॥२॥ 2 भीमानि मितां स्तोकां (?) करोतीति भीमः भयविनाशकः इत्यर्थः, तस्य सम्बोधनं हे भीम ! । 3 हे नृप ! । 4 [गुणैरिति] "औदार्यं समता कान्तिः" [वाग्भट्टालङ्कार. ३.२] इत्यादिभिः दशभिः काव्यगुणैस्तनुवाग्विभवोऽपि सन् । 5 आत्मनः कर्माणि सांसारिका व्यापाराः, तत्करणे समर्थाम् ॥३॥ । 7 हे जिन ! तव नामवाक् 'श्रीवीतराग' इत्येवंरूपा । 7 अर्थप्रतिपत्तये अभिमतार्थसिद्धये भवेत् चेत्, तर्हि तव मन्त्रैः अलं पूर्यताम्, कीदृशैः? साधयितुमशक्यैः । 8 मन्त्रं धर्मविचारं करोति इति, तस्य ॥४॥ 9 [इज्या]"यज देवपूजासङ्गतिकरण-दानेषु" [—] इति वचनात्, देवपूजादिभिः सुकृतैर्विशुद्धः आत्मा यस्य सः । 10 केवलावबोधात् । 11 तरितुमशक्यं संसारसागरमित्यर्थाद् ज्ञेयम् ॥५॥ 12 आसमुद्रक्षितीशां चक्रिप्रमुखाणां, मनीषिणां बुद्धिमतां महर्षीणां माननीयः । 13 समीपवर्तिनीं मुक्तिं ॥६॥

14 हे सोहम ! सह ऊहेन मया च वर्त्तते इति - [स+ऊह+म]सोहमः तत्सम्बोधनं । ऊहो दोषपरिज्ञानं, मा लक्ष्मीः शोभा, [मा मातरि तथा लक्ष्म्यां सुधाकलश-एकाक्षरनाममाला ३५] 15 काले वाद्धुं[र्ध]क्यादौ प्रबोधो ज्ञानं येषां ते । 16 जन्मप्रभृति निर्दोषाणां [सत्त्वानां इति शेषः] । 17 त्वं गम्योऽसि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

18 ज्ञानेन केवलावबोधेन भास्कर इव भास्करः । 19 यथा काले सूर्योदयसमये विकाशवतां पद्मानां भास्करो गम्यो भवति । [तथा] ॥७॥

20 सर्वेभ्यः विद्वद्भ्योऽधिकं बुद्धिबलं न्यायो वा प्रेम [–] ॥८॥ 21 'नहि' इत्येकमव्ययं निषेधवाचकं [ ] ॥९॥

22 दे[व]! तव भक्तिः कल्याणकारिणी, सतां मनसि समागता सती परत्रेह च लोके सुखाय भवति ॥१०॥ 23 'ता लक्ष्मीः शोभा वा, [ता श्रियाम् - सुधा कलश-माला २३] ॥११॥ 24 अस्य / आः / त्वं / इति पदच्छेदः, आः इति अव्ययं, सन्तापप्रकोपसूचकं, जीवं प्रति सन्तापप्रकोपपूर्वकं वक्ति [आः सन्तापेऽव्यये कुध्या.... सुधाकलश-माला ३] ॥१३॥

★

भक्तामरपादपूर्तिस्तोत्रटिप्पण

1. 'भूधातोः प्रथमगणस्य परस्मैपदिनः वर्त्तमानायां तृतीयपुरुषस्य द्विवचनस्य रूपम् ।

2. 'अङ्ग' इति कोमलामन्त्रणेऽव्ययम्

3. पिता । 4 'अस्य' इति नाम्नः । 5 स्वाधीनं सौधरसेण पीयूषरसेण सारं श्रेष्ठं सरः यस्य स-इति विग्रहः कार्यः । 6 चर्मचक्षुषां छद्मस्थानाम् इति यावत् । 7 'ते' इति कोविदाः । 8 'ततः' इति तेभ्यो दीपेभ्यः । 7 'कुमुदं' इति शशिविकसि जलजं, अथ च कौ पृथिव्यां मुद् हर्षः इति कुमुद्, तां इति द्वितीयोऽर्थोप्यूह्यः । 10 पद्मानां आलिका श्रेणिः तां, अथवा पदस्य मालिका पद्मालिका, तां पदपदवीम् इत्यर्थः । 11 तमः अज्ञानं, तस्य ग्रहः ग्रहणं बन्धनम् अज्ञानबन्धनं इत्यर्थः, अथ वा तमो राहुः ["तमो राहुः सैंहिकेयो"... इति अभिधान चिन्तामणि-देवकाण्डे १२१] तस्य ग्रहः, यः पर्वणि जायते सः, तस्य ॥

12. 'विधन्'-विधत् विधाने [हैमधातुपाठे १३७२ तमस्य]धातोः वर्तमानकृदन्तस्य शतृप्रत्ययान्तस्य पुंलिङ्गे प्रथमाया एकवचनरूपम् । 13 'ऋते' इति 'विनाऽर्थकमव्ययम् । 14 'आख्यः' इति आपूर्वकस्य 'ख्यांक्' अदादेर्धातोरद्यतनभूतकालस्य द्वितीयपुरुषैकवचनरूपम् । 15 'त्रिशक्तिः' इति गजाश्वपदातिरूपा नृपाणां तिस्रः शक्तयो भवन्ति ।

★ ठे. २०३, B. एकता एवन्यू, बेरेज रोड,
वासणा, अमदावाद-७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री श्रेयांसजिन स्तवन

सं. उपाध्याय भुवनचन्द्र

आ दीर्घ स्तवनकृतिनी हस्तप्रति राधनपुरना विजयगच्छना ज्ञानभण्डारमां छे. फोटोकोपी करावती वखते पोथी-प्रतक्रमांक नोंधवानुं रही गयुं छे.

रचनावर्ष १७९४ छे. रचयिता पण्डित अथवा पंन्यास विशेषसागर छे. तेमनी गुरुपरम्परा कृतिना अन्तभागमां आपेली छे : विजयक्षमासूरिविजय-दयासूरि-वाचक कुशलसागर-पण्डित उत्तरसागर-चतुरसागर-पण्डित लालसागर -विशेषसागर. हस्तप्रतमां 'विजयक्षेमसूरि' लखेलुं छे, परन्तु तपागच्छनी पट्टावलीमां 'विजयक्षमासूरि' जोवा मळे छे.

सांतलपुरना मार्गे कच्छ-वागडमां प्रवेश करतां सर्वप्रथम गाम आडीसर आवे छे. अहीं श्री श्रेयांसनाथ भगवाननुं देरासर हतुं. मूलनायक श्रीश्रेयांसनाथ भगवाननी प्रतिमा अने प्रतिष्ठा विशे प्रस्तुत रचना सुन्दर प्रकाश पाडे छे. पाटणना सोनी रायमल्ले श्री विजयसेनसूरिना हस्ते आ प्रतिमानी प्रतिष्ठा सं. १६६८मां करावेली., आ बिम्ब पाटणमां एकसो चौद वर्ष रह्युं. आडीसरना संघे नवुं देरासर बंधाव्युं. मूलनायकनी प्रतिमानी जरूर हती, ते माटे सेठ रायमल्लनी भरावेली प्रतिमा पाटणथी लाववामां आवी. सं. १७८२ मां मोटी धामधूम साथे प्रतिष्ठा करवामां आवी. स्तवनमां आ प्रतिष्ठा उत्सवनुं वर्णन नथी आपवामां आव्युं परंतु बिम्ब भरावनार श्रेष्ठिनो परिचय विशेषरूपे अपायो छे : ओसवाल वंश, बूहड शाखा, गोठि गोत्र, सोनी रायमल्ल ठाकरसी, भार्या नगाई. स्तवनमां श्रीश्रेयांसनाथ प्रभुना जीवनना प्रसंगोनुं काव्यमय वर्णन छे. एक-बे स्थले पंक्तिओ सुधारीने लखवामां आवी छे, तेथी कदाच आ प्रति मूलादर्श प्रति होय.

श्रीश्रेयांसनाथ भगवाननुं देरासर भूकम्पमां ध्वस्त थयुं छे, प्रतिमाजी सलामत छे अने नूतन मन्दिरमां हवे पुनः प्रतिष्ठा थई छे. जो के मुख्य जिनालय घणा समयथी श्रीआदीश्वर भगवाननुं गणाय छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ श्रीमत् सदुरुभ्यो नमः ॥

॥ दूहा ॥

ऋषभ जिन मंगल करण परम सौख्य दातार ।
प्रथम तेह जिनवर नमो जगगुरु जगदाधार ॥१॥
तुं वरदाई सारदा तुझ मुखडुं इंदु समान ।
वीणा पुस्तक सोहती द्यें मुझ वचन रसान ॥२॥
मुझ गुरु चरणकमल नमुं जे श्रुतज्ञान दातार ।
श्रीश्रेयांस प्रभुने स्तवुं जस गुण परम अपार ॥३॥

ढाल - १

मथुरानगरीनी मालणी - ए देशी

पुष्करवर नग्ग दीपतो ए तो पूर्ववर दीव मझार हो जी(जि)न
ओलगुं शुभ भावसुं ॥ ए आंकणी ॥
शीता नदी दक्षण दिशे ए तो रमणिज विजय सुखकार हो ॥१॥ जी०
तिहां नगरी शुभापुरी, ए तो मानूं लंक समान हो जि०
राज करे वसुधापति, नलनीगुल्म नृप अभिधान हो ॥२॥ जी०
ते राजन सवें सुख भोगवें ए तो जोगवे मन वयराग हो । जि०
तिहां वज्रदत्त गुरू आव्या सुणी ए तो वांदवा जाइं महाभाग हो ॥३॥ जि०
अमृतमय सुणि देशना ए तो लीधो संयमभार हो । जि०
शुभ भावें तप करें आकरा इग्यार अंग पाठक धार हो ॥४॥ जी०
एणि विधे चारित्र पालीनें तिहां कतिचित गोत्रे करी काल हो । जि०
अच्युत देवलोकें ऊपना तिहां बावीस सागर आयु पाल हो ॥५॥ जि०
बारमा सुरलोकथी चवें ए तो देवस्थितिनो करें अंत हो । जि०
जेठ वदि छठि दिने श्रवण नक्षत्रइं शुभ शंत हो ॥६॥ जि०
मकर राशि आव्ये कौमुदी मध्याह्न निशि समें ताम हो । जि०
देशविशेषमें दीपती सिंहपुरी कंचनमय धाम हो ॥७॥ जि०
तेह नगरीनो राजीओ ए तो विष्णु भुपति कृपाल हो । जि०
तस घरि सूरललना जिसि काइं विष्णुदेवी पतिव्रतापाल हो ॥८॥ जि०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंपति विषयक सुख भोगवें कांइं जोगवें राम जिम शीत हो। जी०
एक दिन परम आनंदसुं सुख सेजें पोढ्यां नहि भि(भी)त हो ॥९॥ जि०
चउद सुपन देखें भला ए तो विष्णुदेवी महामत्र हो । जि०
तेहवि सूरलोकथी चवी प्रभु विष्णुमाता कुखें ऊतपत्र हो ॥१०॥
लीलाइं सुपन देखी करी संभलावें निज पति पास हो । जि०
निजमति अनुसारें कहे सुत होसे त्रिलोकी प्रकाश हो ॥११॥ जि०
अनुक्रमे गर्भ वधतें थकें पुर्ण हुआ शुभ नव मास हो । जि०
उपरि षट् दिन व्यतिक्रम्यइं फागुण वदि द्वादशी खास हो ॥१२॥ जि०
अद्ध निशि श्रवण नखत्तें मकरे स्थित रोहिणी कंत हो । जि०
तेहवें जिनजी जनमीया तिहां वरत्या शुभ विरतंत हो ॥१३॥ जि०
जन्म कल्याणक सुर करें सोहंमादि चोसठि इंद हो । जि०
तिम निज पूरी शिणगारिने जन्मोत्सव करइं नरेंद हो ॥१४॥ जि०
असूचि टालीनें नाम ठवें श्रेयांस कुमर दयाल हो । जि०
बुध **चतुरसागर** गुरु सेवथी शिश कहें जिनगुण रसाल हो ॥१५॥ जि०

॥ सर्वगाथा-१८ ॥

॥ दूहा ॥

अविनासी इग्यारमो मतिश्रुतअवधि निधान ।
जन्मजात त्रय ज्ञानमय तारण भवनिधि सोपान ॥१॥

पंच धावि लालिजतां वधें जिम सूरतरू छोडि ।
दिन दिन कोडि वधामणी सूरनर करें मन कोडि ॥२॥

इक्षा वंशें उपना काश्यप गोत्रें सदैव ।
सोवनवान देह जलहलें लंछन खडगी अतिव ॥३॥

एक सहस नइं अड अधिक लक्षण अंगें जगीश ।
उछेह अंगुल इंसी धनुष आत्मंगुल एकसो वीस ॥४॥

अनंत बल लक्षण अधिक जोवन वय जब लीध ।
मातपिता अति नेहसुं विवाह सामग्रि कीध ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल - २

मधु मादननी देशी

जीरे विष्णु महीधर तांम जोसी तेडि लगन थपाविया जीरे जी०
जीरे अतिमोटे मंडाण श्रेयांसकुमर परणावीया जी० ॥१॥
जीरे सुख विलसें दिनरात केइ दिन हरखमें जोगवी जीरे जी०
जीरे एकवीस लाख वर्ष कुमार पदवी भोगवी जी० ॥२॥
जीरे एकदिन विष्णु नरेंद मनमें संवेग ऊपनो जी०
जीरे थापी जीनने राज भय जाणि भवजल कूपनो जी० ॥३॥
जीरे सूगुरू पासें जाय चारित्र चोख्युं आदर्यो जी०
जीरे स्त्री भर्त्तार बे साथ तपें करी पाप भय क्षय कर्यो जी० ॥४॥
जीरे मातपिताइं करी काल सनतकुमारें बे सूर थया जी०
जीरे हवें श्रेयांशकुमार राज करे प्रजा उपर दया जी० ॥५॥
जीरे इम एकवीस लाख वर्ष राज करतां दिन थया वली जी०
जीरे तेहवें लोकांतिक देव प्रभुनें सीस नमावें लली लली जी० ॥६॥
जीरे जय जय तुं जिनदेव शासन धर्म वरताविइं जी०
जीरे तुम पूर्वे जीन थया दश तेह परिं जय पताका बंधाविइं जी० ॥७॥
जीरे एहवुं सुणी निजकर्ण धर्म धुराइं मन उल्लस्युं जी०
जीरे दिन प्रतें वरसें दांन एक कोडि आठ लाखसुं जी० ॥८॥
जीरे एक वरसनो सवि दांन तेहनि भवि संख्या सुणो जी०
जीरे तिनसे कोडि अठ्यासी कोडि एंसी लाख उपरि गणो जी० ॥९॥
जीरे इम देइ संवत्सरी दान फागुण वदि तेरस दिने जी०
जीरे श्रवण मकरें स्थित चंद्र संयम आदरे महामनें जी० ॥१०॥
जीरे छठ तपें जिन देव सूर विमलप्रभा शिबिका धरें जी०
जीरे पहेरावी भुषणसार पालखी बेंसी सिद्ध करें जी० ॥११॥
जीरे चिहुं दिशि उभा इंद्र छत्र धरें चामर विंझतें जी०
जीरे साथें चतुरंगी सेन मधुरें स्वरें मादल गुंजतें जी ॥१२॥
जीरे सिंहपुरी नगरी मध्य ललना ल्ये उवारणा जी०
जीरे सहसाम्र वनें छैं अशोक शिबिका ठवे शुभधारणा जी० ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीरे पंचमुष्टी करे लोच इंद्र कचोलो आगल धरे जी०
जीरे एक सहस नर साथ पुर्वाह्न समें दीक्षा वरें जी० ॥१४॥
जीरे तेहवें चउनाण उपन्न देवदुष्य एक लाखनो भलो जी०
जीरे सिद्धारथपुरें पहुत नंद नामे ते इभ्य गुणनीलो जी० ॥१५॥
जीरे खीरे पारणुं तस गेह पंच दीव्य प्रगट थया जी०
जीरे साडीबार कोडिसोवन वृष्टि त्रीजे भवें नंद मोक्षें गयो जी० ॥१६॥
जीरे मास अडनो उक्कोस तपमान विहार करें आरिज देशमां जी०
जीरे प्रमाद नहें लवलेश उपसग्ग नहिं उपशमा जी० ॥१७॥
जीरे छद्मस्थ काल बे मास माघ वदि-नष्टचंद्र[1] वासरे जी०
जीरे सिंहपुरी वन सहसाम्र तिन्दूक तरु बार गुणो आसरे जी० ॥१८॥
जीरे तेह तरुवरिं ध्यान धरंत छठ पुर्वाह्न चंद्र वहे जी०
जीरे ते दिन केवल लहंत बुध **चतुरसागर सीस** इम कहें जी० ॥१९॥

॥ सर्वगाथा-४२ ॥

॥ दूहा ॥

कर्म हणी केवल लह्यो एकादशम अरिहंत ।
इंद्रादिक आवि तिहां प्रभु पद सीस ठवंत ॥१॥
वांदि सूरपति इंद्र कहे प्रभुने नाण उपन्न ।
ते माटे त्रिगडुं रचो नव नव भक्ति निप्पन्न ॥२॥
एहवुं सुर सहु सांभली प्रथम तव वायकुमार ।
जोयण एक मही सारवें टालें तृण रज अंधार ॥३॥
मेघकुमार मन हर्षस्युं सुरभादिक जलधार ।
ते उपरि षट् ऋतु तणा वरसें फुल अपार ॥४॥
तव व्यंतर सूरपति रचें मणिकनक रत्नमइ पीठ ।
ते उपरि पंच वर्ण कुसुम जानुप्रमाण सूपइष्ट ॥५॥
उंधइं बेटें कूशम धरें वाणव्यंतर तिहां देव ।
चोसठि इंद्र प्रभुने स्तवी ललित वचन कहे ततखेव ॥६॥
ऋद्धि अनंती तुम तणी में किम वर्णि जाय ।
ज्ञान दिवाकर साहिबा द्यो मुझ निजर पसाय ॥७॥

---

१. अमावास्यादिने इत्यर्थः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल - ३

अंबरी ऊभें गाजें हो भटीआणी राणी वडचुइं - ए देशी

भुवनपति तिहां सूरपति हो तव पहेंलो गढ रचना करें रूपानो पायार।
कोशिसां सोवनमय हो तिहां फलकें सुवृत्ताकारमें भवि सुणो एह वियार ॥१॥

चंद सूरय गह पमुहा हो प्रभु समुहा सूर जोइस मिली कंचनमय बीजो दूरंग।
रयण कोशिसां सरिसां हो समश्रेणि सोहें चिहुं दिशें त्रीजो रत्नमय सूरंग ॥२॥

चंद सूरय गह पमुहा हो प्रभु समूहा सूर जोइस मिली - ए आंकणी ॥
वेमाणिय सूरराय वर हो बहु मणीनां कोशीसां करें उंची भिंत धणुशत पंच।
वित्थारपणें तेतीस धणुं हो अनें उपर बत्रीस
अंगुल देव करें शुभ संच ॥३॥ चंद०

षट्शत धनूषनें मानें हो एक कोशनो त्रिण गढ
विचें अंतरो रत्नमय पोलि तिहां च्यार ।
धरतीथी पावडीयां हो दस सहस ओलंघी
आवतां तिहां रूप्यगढनी पोल द्वार ॥४॥ चंद०

रूपाना गढनी पोलिथी हो समीभूइं पंचास धणूं आगें पंच सहस्स सोपान ।
कंचन गढनी द्वारथी हो अवकमीइं पंचास
धणूं वली तिहां पंच सहस निदान ॥५॥ चंद०

रत्नगढना द्वार मुखथी हो मांहिं जातां तिन्नि
सय धणू ए फरती समी भूमि ।
ते आगें गाउ एकनो हो मनोहर मणीपीठ कह्यो
ते विचिं देवछंदो सोम्य ॥६॥ चंद०

नव नव सें धणुं पुर्व पर छंडी हो दिल मंडी
पीठ बीजो करें बेसें धणुं लंब पोहोलो तेम ।
उंचो जिनदेहनें मानें हो ते बेंसवानो मणीपीठ
हुंइं वली सुणो भवि एम ॥७॥ चंद०

तिहां चार द्वार उदारा हो अति सोहें त्रिण
त्रिण पगथालीयां चार दिशें सिंहासन चार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेह विचिं देवचं(छं)दो हो तिहां वृक्ष अशोक
बार गूणो जिन देहथी ऊंचो सार ॥८॥ चंद०
जोयण एक झाझेरो हो समोसरण उपरि
छाइ रह्यो एह अशोक तलें देवपीठ ।
चार दिशें सिंहासन फिरता हो तिहां जीननी
बेठक रलीआमणी वली चार निंचा पादपीठ ॥९॥ चंद०
चार सिंहासन उपरि हो विराजीत छत्र त्रिण
झलकता जिनरूप सम त्रिण बिंब ।
श्वेत चामर विंजाता हो प्रभु चिहुं पासें बें बें
शोभता भामंडल चार पूठिं अविलंब ॥१०॥ चंद०
धर्मचक्र चिहुं दिशें जिन आगें हो सोवन कमल में
गगनें फरें धजछत्रादि मंगलीक आठ ।
मणीमें थंभें पूतलीउं हो नृत्य करती वरदाम
वेदिका चिहुं द्वारें मंगल पाठ ॥११॥ चंद०
मणिमे द्वारे चारे हो ते तोरण त्रिण त्रिण
हुंइं धूप व्यंतरींक उघाहंत ।
जोयण एक सहस प्रमाण हो इंद्र ध्वज दंड
उपरि लहकतो चार धजा चिहुं दिशिं सोहंत ॥१२॥ चंद०
समभूतल धरणीथी हो अति उंचो अढी
कोश भण्यो ए समोसरणनो मान ।
ऋषभादि वीर पर्यंत हो ए सघलो निज निज
करें जाणवो त्रीहुं गढइं वास सहस सोपान ॥१३॥ चंद०
रत्नगढ बाह्य ईशानें हो देवछंदो मणीनो सूरें
करें तिहां जिनने वीसामा ठाम ।
थलयर तिर्यंच खयरा हो वली जलचर बीजें
गढ निसूणे देशना चउपय बेंसें हित काम ॥१४॥ चंद०
(बीजें गढें बेसे अभिराम)
वाहन सुखासन पालखी हो पहेलें गढ ठविं रंगस्यूं चोखुणे दो दो वावि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनइं वाटलें समोसरणें हो चिहुं खुणें वावि
एकेकी हुइं वली सुणो सूरभाव ॥१५॥ चंद०
भवणा व्यंतर वेमाणिय हो ए सूर रत्नगढना
पोलिया वर्णे पीत धवला रत स्याम ।
धनूं दंड पास अनें गदा हो ए हस्तें
आयुध सूर धरें सोमयमवरुणादिनाम ॥१६॥ चंद०
ए चार यक्ष पहेंला गढना हो अनुक्रमे द्वारपाल
कह्या बीजें चार देवी रखवाल ।
सूरा देव त्रीजा गढ बाहिर हो पुर्वादिक द्वारना
पोलीया तुंबरुं नामे देव मयाल ॥१७॥ चंद०
सामान्य समोसरणें हो एहवी विध सघली
जाणवी जो आवें को महर्द्धिक देव ।
तो स्वयमेव एकाकी हो समोसरण एह
विध सुं करे ए विगत कही संखेव ॥१८॥ चंद०
हवें इंद्रादिक आग्रहथी हो श्री श्रेयांश मही
पावन करें आवें देव चंदा समीप ।
समोसरणें पुर्व दिशथी हो ते मांडि प्रदिक्षण
त्रिण दिइं पूर्व मुखें त्रिभूवनीप ॥१९॥ चंद०
नमो तिथ्थस्स मुख भाषइं हो जिन दाखें
अमृत देशना सुणें देवमणू तिर्यंच ।
जोजन प्रमाण जिणंदनी हो भजी वाणी गुहरी
गाजति संदेह न राखें एक रंच ॥२०॥ चंद०
साधु वैमानिक देवी हो वली साधवी ए त्रिण
पर्षदा अग्नि कूणें बेसइं विनित ।
जोइस भवणा व्यंतर हो ए त्रिहुंनी देवी
नैऋते कूणें बेंसें सू प्रवीत ॥२१॥ चंद०
भवणा व्यंतर जोइस हो ए त्रिक सूर वाय
कुणें सांभलइं इत्यादिक सभा हुइ नव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक सूर मनुष्य ज हो वली मणु
स्त्री ईशांनें बेंसीनें सफल करें मणु भव ॥२२॥ चंद०
चार निकायनी देवी हो जिन सेवी अने
वली साधवी ए उभी सूणें परषदा पंच ।
नर अनें नर ललना हो वली चार निकायना
देवता सातमें साधु दूख न हे रंच ? ॥२३॥ चंद०
इत्यादिक सात पर्षद हो रत्नगढे बेसी सांभले ए आवश्यक वृत्ति अधिकार।
हवें आवश्यक चूर्णे हो मन पूर्णे भविआं
सांभलो अज्जा-विमाणदेवी उदार ॥२४॥ चंद०
ए बें परषद उभी हो नित सांभलें प्रभुनी देशना
शेष गणधरादि पर्षदा दश ।
बेठी सांभलें वाणी हो हीत आणी प्राणी
चित्तमें न हे वयर नें भूख तरस ॥२५॥ चंद०
वार्जित्र कोडाकोडि हो गयणमें अणवायां
वाजें दानशीलादि द्यो उपदेश ।
कई समकित पामी हो शिरनामी प्रभू वांदी
वले बारे परषदा जिनने आदेश ॥२६॥ चंद०
चोत्रीस अतिशय शोभित हो जिन अढार
दोष रहितपणें पांत्रीस वाणी गुणसार ।
अष्ट महाप्रातिहारिज हो विराजित जाणे
दीनमणी सूणो गणधर परिवार ॥२७॥ चंद०
प्रभुने छौतेर ७६ गणधर हो कौस्तुभनामा
आदि करी चौरासी सहस साधु परिवार ।
धारणी नामा साधवी हो एक लाखने त्रिण
सहस कही तृपूष्ट नामा वासुदेव नृप सार ॥२८॥ चंद०
श्रावक संख्या बे लाख ने हो उगण्यासी सहस
ते भण्या श्राविसंख्या सूणो धरी नेह ।
चार लाख ने उपरि हो अडतालीस सहस
इम कही छौंतर ७६ गछ संख्या एह ॥२९॥ चंद०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासन सानिधकारि हो व्रतधारी यक्ष मनुखेश्वर
श्रीवत्सादेवी संघ रखवाल ।
इत्यादिक गुणधामी हो तम वामी जिन इग्यारमो
विशेष कहे प्रभूजी दयाल ॥३०॥ चंद०

॥ सर्वगाथा - ७९ ॥

॥ दूहा ॥

गृहस्थावास भगवंत तणो त्रिस द्वि लाख ते वर्ष ।
लाख एकवीस केवल पर्णे बइं मास उंणें उत्कर्ष ॥१॥
वर्ष लाख चोरासि आउखुं पूर्ण थये जिनराज ।
अणसण करे मन उजमें शिव वधू वरवा काज ॥२॥
श्रावण वदि तृतीया दिनें श्री श्रेयांश जिनवीर ।
एक सहस साधु सहित मास भक्त वड वीर ॥३॥
समेत शिखर नग्ग उपरि काउसग्ग मुद्राइं देव ।
शुक्लध्याने मोक्षे गया निर्वाणोत्सव सूर करे हेव ॥४॥
जिन प्रतिमा नित पूजतां सिझें वांछित काम ।
इंम जाणि केइ भवि जना बिंब भरावें तुम नाम ॥५॥
गुर्जरदेशे पत्तन नयर तिहां वणिक वसे **ओसवाल** ।
बुहड साखा दीपति **गोठि** गोत्र रसाल ॥६॥
सोनी ठाकरसी तस **प्रिया नगाई सूत रायमल्ल** ।
बिंब भरावें अभिनवुं भावना भावे भल्ल ॥७॥

ढाल - ४

आरा माहिं ओरडी ललना तिहां किण हो
बाजोठ ढलाव हरणी जव चरें ललना - ए देशी

विचरंता महिमंडले ललना, पउधार्या हो **पीराण पटण** मझारि,
करें भवि वंदना ललना ।
सोनी रायमल्ल नेहथी ललना, निजधर तेडी हो **तपगछ** गणधार,
पूजें पद अरिवृंदना ललना ॥१॥
संवत सोल अडसठिं ललना, **वैशाख वद हो छठ गुरुवार**, क० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीविजयसेनसूरि निज करे ललना,
बिंब प्रतिष्ठें हो श्रीश्रेयांस आधार, पू० ॥२॥
तिहां प्रभू बिंब बहु दिन रह्युं ललना,
महिमावंत हो पूजा सत्तर प्रकार, क० ।
एकसो चौदउ हो वर्ष अभिराम, तेहवें **वागड** देशमां,
आडिसर नयर हो सुखठाम, पू० ॥३॥
नवो देवल संघे तिहां **कर्यो** ललना,
मूलनायक हो प्रतिमा नहें एक, क० ।
इम विचारी पाटणथी ललना,
पधरावो हो संघ राखेवा टेक, पू० ॥४॥
संवत सतर ब्यासीइं ललना,
श्रावण सूदि हो पंचमी वार सोम, क० ।
शुभ दिन महुरत थापीउं ललना,
खेला रस हो नृत्य करता भूमि, पू० ॥५॥
ढोल निसांण ते वाजतें ललना,
गावे गोरी हो मधू स्वरगीत, क० ।
इम अनेक आडंबरें ललना,
बेसार्या हो देहरें सुभ रीत, पू० ॥६॥
बावना चंदन घन घसी ललना,
केशर सूकड हो माहि रंगरोल, क० ।
घाली कचोलें पूजा करें ललना,
भावें भावना हो फरति ओलाओलि, पू० ॥७॥
तुं माता तुं ही पीता ललना,
तु ही बंधु हो जगपालक नाम, क० ।
भवसायरथी मुज उधरो ललना,
अविनाशी हो सुख दीजें धाम, पू० ॥८॥
मुज अपराधी सम जना ललना,
तिं तार(रि)या हो नरनारिना कोडि, क० ।
हिव राखी सेवक भणी ललना,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लखचोरासि हो अवतरण छोडि, पू० ॥९॥
सितरसो ठाणा बोल जोईने ललना,
देवेंद्रसूरि हो चरित अविलोय, क० ।
आवश्यक वृत्ति अनुसारथी ललना,
मिं गुंथ्या हो बोल निरबुद्धि होय, पू० ॥१०॥
एहमां ओछुं अधिकुं कह्युं ललना,
विचारी हो शुद्ध करयो विद्वान, क० ।
श्रीश्रेयांश शासन प्रतपयो ललना,
मंदिरगिरि हो वली गगनें भाण, पू० ॥११॥
पंडित चतुरसागर गुरु शोभता ललना,
तस शिशु हो **लालसागर** विनित, क० ।
तस पदकमल .... सम ललना,
विशेष कहे हो..... पू० ॥१२॥
वेदांक संयम संवते ललना,
आसो सित हो **दशमी** रहिय चोमास, क० ।
आडीसरना संघनी ललना,
श्रीवत्सादेवी हो तुम पुरेयो आस, पू० ॥१३॥

॥ कलश ॥

इम थुण्यो जिनवर भक्ति निर्भर एकादशम अरिहंत ए ।
आडिसर मंडण भयविहंडण सिधरंजन भगवंत ए ॥
तस(प) गच्छनायक सुमतिदायक **श्रीविजयक्षेमसूरीस** ए ।
तस पट्ट प्रभकर तेज दिनकर **श्रीविजयदयासूरि** ईश ए ॥१॥
तस गच्छ राजें अतिसकाजें **श्रीकूशलसागर** वाचकवरो ।
तस शिस पंडित सगुण मंडित **उत्तमसागर** श्रुतधरो ॥
तस चरण सेव **बुद्धि चतुर** गुण निधि तस शिश पंडित **लाल** ए।
तस शिश एम **विशेष** जंपें प्रभु गुण भणें ते मंगल माल ए ॥२॥

॥ सर्वगाथा - १०१ ॥

॥ इति श्रेयांश जिनस्तवन समाप्त ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोत्रीश अतिशयवर्णन गर्भित श्रीसीमंधरजिन स्तवन

सं. : पं. महाबोधिविजयजी

भूमिका :

महाविदेहक्षेत्रमां वर्तमानमां विचरता भगवान श्रीसीमंधरस्वामीना ३४ अतिशयोना वर्णनथी युक्त प्रस्तुत स्तवन ४१ कडी युक्त पांच ढाळमां रचायेलुं छे.

कर्तापरिचय :

विक्रमना सत्तरमा सैकामां रचायेला प्रस्तुत कृतिना कर्ता तपागच्छीय श्रीविजयदानसूरि महाराजना शिष्य श्रीहर्षसागरउपाध्यायना शिष्य श्रीकमल-सागरजी महाराज छे. जैन गूर्जरकविओ जेवा ऐतिहासिक ग्रन्थोमां सघन तपास करवा छतां कर्ता अंगेनो विशेष परिचय के कर्तानी अन्य कृतिओ अंगेनी विशेष माहिती सांपडी नथी.

प्रतिपरिचय :

श्री लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिरना ज्ञानभण्डार-मांथी प्रस्तुत हस्तप्रतिनी प्रतिकृति प्राप्त थयेल छे. त्रण पत्रात्मक आ कृति प्रायः सत्तरमा सैकामां रचायी होय तेम जणाय छे. प्रति बहुधा शुद्ध छे. क्यांक क्यांक अशुद्धि छे. अेल.डी.इन्स्टीट्यूटना ज्ञानभण्डारमां आ प्रतिनी बीजी कोपी माटे तपास करवा छतां ते अमने मळी शकी नथी. तेमज कोबाना विशाळ ज्ञानभण्डारमांथी पण आ कृतिनी अन्य हस्तप्रत संप्राप्त थई शकी नथी.

कृतिपरिचय :

पांच ढाळमां रचायेली आ कृतिमां परमात्माना ३४ अतिशयोनुं खूबज सुन्दर शैलीमां वर्णन थयुं छे. प्रथम ढाळनी प्रथम पांच कडीमां भगवान सीमंधरस्वामीनुं केटलुंक वर्णन कर्या बाद पछीनी त्रण कडीमां प्रभुना चार सहज अतिशयनुं वर्णन करायुं छे.

बीजी ढाळनी आठमी कडीमां कर्मक्षयथी प्राप्त थता ११ अतिशयोनुं वर्णन करवामां आव्युं छे. त्रीजी अने चोथी ढाळनी कुल १६ कडीमां देवताकृत १९ अतिशयोनुं वर्णन थयुं छे. पांचमी ढाळनी प्रथम सात कडीमां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमात्माने भावभरी प्रार्थनाओ करवामां आवी छे. छेल्ली बे कडीमां कृतिनी रचनासंवत, तिथि तेमज कर्तानी गुरुपरम्परानो उल्लेख थयो छे.

कृतिसम्पादन :

'जैनगूर्जरकविओ'ना बीजा भागमां ४५४मा कवि तरीके श्रीकमलसागरजी म.ना नामनो उल्लेख छे. तेमज ९३३मी कृति तरीके ३४ अतिशयस्तवननो उल्लेख थयेल छे.

जो के जै.गू.क.ना संग्राहक मोहनभाई देसाईने आ कृति अधूरी मळी होय तेम जणाय छे. कारण के अेना आदिभागमां प्रथम बे ढाळ छूटी गई छे. कृतिनो प्रारम्भ सीधो त्रीजी ढाळथी थाय छे. ज्यारे कृतिना अन्तभागमां पण महत्त्वनो फरक जोवा मळ्यो. अमने प्राप्त थयेल हस्तप्रतमां कृतिनी रचना संवत 'इन्दुषड्-रस-लेशा' द्वारा १६६२ बतावी छे. ज्यारे जै.गू.क.ना द्वितीयभागमां 'इंदु रस बिंदु लेसा' द्वारा १६०६ बतावी छे. आम ६० वरसनो फरक पडे छे. कर्ता श्री दानसूरिमहाराजना प्रशिष्य होइ १६६६ने बदले १६०६ वधु योग्य ठरे छे. वधु साधनना अभावे आ चर्चाने आगळ लंबावता नथी.

आ कृतिनी प्रतिकृति करी आपवामां पं. अमृतभाई पटेलनो सहयोग सांपड्यो छे.

★

चोत्रीशअतिशयवर्णनगर्भित श्रीसीमंधरजिनस्तवन

॥ ८ ॥ **ॐ परमगुरुश्रीहर्षसागरउपाध्यायगुरुभ्यो नमः ॥**

(ढाल - १)

सदानंदि वंदु जुगादीस देव,
जेहनी अहिनिसि सुरनर करइ सेव ।
परमगुरु पासि मइ निर्मल बुद्धि मागी,
हिवइं हुं थुणुं **श्रीमंधिर** पाय लागी ॥१॥

प्रभो मइं सुण्या तुम्हे पूरव माहाविदेह,
तिहां अछइ **पुष्कलावती** विजय नाम जेह ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभो नयरी **पुंडरगिणी** अतिरसाल,
तिहां उपना **श्रीमंधिर** गुण विशाल ॥२॥

प्रभो पंचसइं धनुष तनु सोवर्ण वान,
प्रभो पाए लंछन वृषभ सोहइ प्रधान ।
प्रभो तुम्ह पूरव लख्य चउरासी आय,
प्रभो धिन्न ते राजकुलि उपना जिनराय ॥३॥

प्रभो अनुक्रमि भोगव्यां विषयसुख राजभोग,
प्रभो मनि करी जाणीउ अथिर ए संयोग ।
प्रभो **मुनिसुव्रत** वारइ हुआ चारित्रचारी,
तव तुम्हे कर्मरिपु भावठि दूरि वारी ॥४॥

प्रभो मइं जाणीइं तुम्हे छंडीउ सयल संग,
पणि हजी ताहरइ मनि संयम रमणि रंग ।
प्रभो तेणइ बहुत तुम्ह पासि ठकुराई दीसइ,
प्रभो एणइ कारणि चउतीस अतिशय कहीसि ॥५॥

(४ सहज अतिशय)

प्रभो ताहरुं रूप मुझ मनि अति सुहाइ,
इस्यु को नही समवडि जि अनुपम दिवाइ ।
प्रभो जन्म लगइ अतिशय अछइ तुम्ह च्यार,
प्रभो मंसनइ रुधिर होइय स्युं दुग्धवार ॥६॥

बीजइ निर्म्मलु देह तुम्ह स्वेद नहीं रोगबंध,
त्रीजइ सास निस्वास कमल उत्पल सुगंध ।
चुथइ आहार नीहार नवि छदमस्थ देखइ,
प्रभो ताहरा गुण मूरख कवण लेखइ ॥७॥

प्रभो केवलतणा हिवइ कहुं अतिशय इग्यार,
प्रभो धिन्न ते देश जिहां जिन करइ विहार ।
प्रभो ताहरी चातुरी मइं हिवइं जाणी,
शिवरमणि वरवा काजि ए ऋद्धि आणी ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल - २ वसंतफाग

(कर्मक्षयकृत ११ अतिशय)

सुर-तिरि-नर कोडाकोडी, जोअणमांहि समाइ ।
ए अतिशय कहिउ पांचमुं, हिवइं छट्ठुं कहिवाइ ॥९॥

दान-सीयल-तप-भावना, चिहुं परि धर्म कहंति ।
जोअण लगइं सुर-नर-तिरि, भाषा सहुं प्रीछंति ॥१०॥

हिवइ सातमुं अतिशय रुअडु, भामंडल झलकंति ।
प्रभु पूठिइंथी सांवरइ, तेजइं अति सोहंति ॥११॥

पणवीस जोअण दुह(दह)दसि, संकट-रोग-शमंति ।
ए ठकुराई जिन ! तुम्ह तणी, जोवानी मन खंति ॥१२॥

ए अतिशय कहिउ आठमु, मनि धरी नुअमु जोइ ।
जिहां विहार करइ जिन चिहु-दसि तणी दसि वइर न होइ ॥१३॥

जिहां समोसरइ जिन, दसमइ तिहां सातइ ईति न हुंति ।
मरगी मांद(गी) नु हइ इग्यारमइ, जिहां जिनवर विचरंति ॥१४॥

अतिवृष्टि नु हइ बारमइ, तेरमइं नही लघूवृष्टि ।
दुर्भिख्य न हइ वली चउदमइ, जिहां जिननी हुइ दृष्टि ॥१५॥

स्व-परचक्रभय नु हवइ, पनरमइ जिहां जिन वास ।
ए अग्यार अतिशय कर्मखय, च्यार सहजि तुम्ह पास ॥१६॥

ढाल - ३ नाभिनरिंदनी

(देवकृत १९ अतिशय)

सुरना कीधा जोइ, उगणीस अतिशय,
जिनजीनां तुम्हे सांभलु ए ।
धर्मचक्र आकाश, प्रभू आगलि थाय,
चालइ अतिशय सोलमइ ए ॥१७॥

सतरमइ चामर दोइ, ढालइ देवता,
बिहुं पासे रही हर्षस्यु ए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंहासण पायपीठ, रयणे जडिउं अ,
चालइ साथि अठारमइए ॥१८॥

शिर ऊपरि त्रण्हि छत्र, धरी रहइ देवता,
रयणदंड उगणीसमइ ए ।
इन्द्रधज आकाश, रयणे जडीय,
पंचवर्णी सोहइ वीसमए ए ॥१९॥

एकवीसमइ सुरराय, जिन पाए ठवइ,
रूडां नव सोवन कमल ।
बावीसमइ गढ त्रणि, रयण रूपमय,
गढ त्रीजु सोवन विमल ॥२०॥

मद्धिभाग मणिपीठ, बइसी शंहासनि,
दे देशन जिनवर भली ए ।
श्री पहिला कूणि ईशाणि, दस इन्द्र-देवता,
नर-नारी रही सांभलइ ए ॥२१॥

अगनि कूणि रहइ, त्रिण्हि
साधु-साध्वी, वैमानिक देवी सुणइ ए ।
नैरति कुणि विचार, त्रिहुंनी देवीय
भवनपति-विंतर-जोतिषी ए ॥२२॥

चुथी वायनी कूणि, ए त्रिहुं देवता,
भवनपति-विंतर-जोइसीया ए ।
इम कही परषध बार, गढ बीजइ वली
तरीय सवे सहु तिहां रह्या ए ॥२३॥

रथ-पालखी वाहन्न, हस्ती तुरंगम,
शस्त्रे सवे गढ त्रीजइ रहइ ए ।
मणि कोसीसांउलि, चिहुं दसि त्रण्हि-
त्रिण्हि रखवाला पोलि अछइ ए ॥२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिननइ रहिवा काजि, गढ बीजा मांहि,
देवछंदो देविइं करिउ ए ।
ए समोसरण अधिकार, सहिजि कहिउए
संयमनुं सुख भोगववा ए ॥२५॥

चिहुं दसि च्यारइ रूप, जिनवर ! तुम्ह तणा,
दि देशन त्रेवीसमइ ए ।
जोअण एक विस्तार, अशोक उंचो ए,
बार गुणो, चुवीसमइ ए ॥२६॥

ढाल - ४ अढीया

कांटा ऊंधा थाइ, जेणइ पंथि जिनवर जाइ,
भवियण जिन नमो ए, अतिशय पंचवीसमो ए ।
छवीसमइ तरुजाति, अबू जंबू बहु भाति,
ते(त)रु, सघला नमइए भवीयण मन गमइ ए ॥२७॥

देवदुंदभि वाजइ पासि, सतावीसमइ रही आकाश,
वाया विंहुणी ए, ते श्रवणे सहु सहुणा ए ॥
अठावीसमइ चिहुं दसि वाय, सीतल सवे सुहाइ,
मनगमता वली ए गया ताप सवे टलीए ॥२८॥

शकुन सवे आकाश, आवइ प्रभूनइ पांसि,
फिरतां दाहिणाए, अतिशय गुणतीसमो ए ॥
गंधोदक वरसंति, जिहां प्रभू देशण दिंति,
तिहां रज-रेणु न हइए, अतिशय तीसमो ए ॥२९॥

पंचवर्ण फूल जाति, जलय-थलय दोय भाति
अतिशय एकतीसमए, फूलपगर जंघा लगइ ए ॥
नवि वाधइ नह-रोम, जव लाधु संयम योग,
इंद्री नितु दमो ए, अतिशय बत्तीसमो ए ॥३०॥

समोसरण करजोडि अणहुंतइ सुर कोडि,
अतिशय तेतीसमइए, तुहइ निरंजन ! किमइ ए ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छइ रति बारइ मास, इंद्री पंच विलास,
मनगमता हिवइ ए, अतिशय चुतीसमइ ए ॥३१॥

कहिया अतिशय चुतीस, पुहती मनह जगीस,
सुणता मन रुलीए, धिन देखइ ते वली ए ॥
गाम-नगर ते देश, जिहां स्वामी करइ निवेश,
तुम्ह निरयय खिण खिणु ए, धित्र जीवी तेह तणु ए ॥३२॥

ढाल - ५ भरथ उलंभानी

धिन नर-नारी - देवता, अहिनि (शि) तुम्ह पाइ सेवता,
मनगमता फल पामइ तुम्ह सेवता ए ॥
मुझ मन अलजु अति घणुं, जोवा दरिशन तुम्ह तणु ।
अम्ह तणु संदेशु अवधारयुं ए ॥३३॥

मत पाखंड जगमाहि घणा, ते वचन न मानइ तुम्ह तणा ।
तुम्ह तणा शासनमांहि ते नहीइ ए ॥
सूत्र अरथ सूधां कहइ, ते उपरि मुझ मुनि रहइ,
मन रहइ आज लगइ गुरु जबूधिका(?) ए ॥३४॥

इसी आण तुम्हारी वालही, ते सहि गुरुवयणे मइं ग्रही ।
मइ ग्रही भवि, भवि आण तुम्हारडी ए
हुं कुगुरु कुदेवि भोलविउ, करमइ इणी परि रोलविउ ।
रोलविउ तुझ विण स्वामी चिहु गतिइ ए ॥३५॥

दयासागर जिन ! तुम्ह कहीइ, सेवक उपरि हित वहीइ,
तुम्ह कहीइ दि सवक (सेवक) शरीखी सूखडी ए ।
हिवइं सेवक हीइं संभारयु, मुगति जाता वचि रयु,
तारयु तारयु षेवरासु मनि धरु ए ॥३६॥

जिन ! आण तुम्हारी सिर वहुं, तुझ जामलि हुं कुण कहुं,
हुं कहुं त्रिभूवननु तुं राजीउ ए ।
गगन कागल कोइ मनि धरइ, ते षा(षी)र समु खडीउ करइ ।
ते करइ मेरुगिरि सरीसी लेखणी ए ॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरसति लिखइ संदेसडां, तुम्ह मिलवा अम्ह मनि एवडां,
लिखतां पार न (पा)मीइ ए ॥
जु हु तमाहरइ पाखडी, तुम्ह दरिशन जोअत एणी आंखडी,
ए आंखडी सफल करत हु माहरी ए ॥३८॥

हिवइ दि दरिशन जिन ताहरुं, यम गमि रहइ मन माहरुं,
मन माहरुं चरण तुम्हारे थिर रहियु ए ।
बीय चंदा तुम्हे सुणयु ए, वंदन माहरी कहियु ए,
कहियु ए सेवकनइ हिवइ तारयु ए ॥३९॥

(कलश)

ईन्दु-षड्-रस-लेशा कही, ए संवछर संख्या कही
संख्या कही फागुण सुदि एकादशी ए ।
ए तवन कीउ हर्षि करी, श्री गुरु चरण हीइ धरी,
मनि धरी भगतिराग **श्रीमंधिर** तणुए ॥४०॥

तपगछनायक सुखदायक, श्री **विजयदानसूरीश्वरु,**
उवझाय मुनिवर **हर्षसागर**, तासु गच्छि दिनकरु ॥
तस सीस कहइ, जिनवदन ताहरुं **कमलसागर** सोहइ ए
तुम्ह चरणि मुझ मनि, अतिहि लीणु युं भमर मालती मोहइ ए ॥४१॥

इति चोत्रीश अतिशयस्तवनं संपूर्ण ॥
॥ समाप्त ॥

C/o. किरीट ग्राफिक्स
रतनपोळ, अमदावाद-१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्र चर्चा

(१)

जसराज ही जिनहर्षगणि हैं

म. विनयसागर

अनुसन्धान के अंक ३५, पृष्ठ-५३ से ५८ तक कवि जशराजकृत दोघकबावनी प्रकाशित हुई है। इसकी सम्पादिका साध्वी श्री दीप्तिप्रज्ञाश्रीजी हैं। इस दोधकबावनी के प्रारम्भ में कवि-परिचय के सम्बन्ध में सम्पादिका ने लिखा है :- *सं. १७३० मां अषाढ शुदि नोमने दिने मूल नक्षत्रमां अ. दोधक बावनी तेमणे बनावी छे तेवुं तेमणे छेल्ला-५२मां दोहामां लख्युं छे. पण पोते क्यांना छे तथा साधु हता के गृहस्थ, तेवी कोई वात तेमणे लखी नथी, एटले तेमना विषे वधु वीगतो मळवानुं मुश्केल छे.*

वस्तुतः जसराज उनका बाल्यावस्था का नाम था। दीक्षा ग्रहण करने पर जिनहर्षगणि बने थे। खरतरगच्छ की परम्परा के अनुसार जब भी कोई आचार्य पट्टधर बनता था तो अपने कार्यकाल में ८४ दीक्षा नन्दियों में से एक से अधिक नन्दियों का प्रयोग करता था। दीक्षा नन्दी में २०-२५ या अधिक दीक्षाएँ होने के पश्चात् वह नन्दी परिवर्तन कर देता था। जैसे बाल्यावस्था का नाम जसराज था ओर दीक्षा का नाम जिनहर्ष बना। बाल्यावस्था का नाम लोकजिह्वा पर प्रतिष्ठित होने के कारण वह नाम अन्त तक चलता रहा। जसराज, जिनहर्ष बनने पर भी स्वयं की कृतियों में दोनों नामों का प्रयोग करते थे।

ये खरतरगच्छीय श्रीजिनकुशलसूरि की परम्परा में क्षेमकीर्ति शाखा में उ. शान्तिहर्षगणि के शिष्य थे। इनकी प्रथम रचना **चन्दन मलयागिरि चौपई** १७०४ में रचित है। अतः आपका जन्म समय लगभग १६८५ और दीक्षा समय १६९५ से १६९९ के मध्य माना जा सकता है। यह भी सम्भव है कि इनकी दीक्षा जिनराजसूरि के कर-कमलों से हुई हो। कवि का प्रारम्भिक जीवन राजस्थान में ही बीता। विक्रम संवत् १७३६ में कवि पाटण गये और वहीं के हो गये। १७३६ से लेकर १७६३ तक पाटण में ही रहे। यही कारण है कि प्रारम्भिक रचनाओं में राजस्थानी का अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाव है, बाद की रचनाओं में गुजराती का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । ये अपने विषय के निष्णात विद्वान् थे । भाषा कवियों में समयसुन्दरोपाध्याय के बाद इनको स्थान दिया जा सकता है ।

हमें जो दीक्षा नन्दी सूची प्राप्त हुई है वह विक्रम संवत् १७०७ से है । जिनहर्षगणि की दीक्षा इसके पूर्व ही हो चुकी थी इसलिए प्राप्त दीक्षा नन्दी सूची में इसका उल्लेख नहीं है । प्रश्न उपस्थित होता है कि शान्तिहर्ष और जिनहर्ष गुरु शिष्यों की हर्षनन्दी कैसे स्थापित हुई ? सम्भावना है कि शान्तिहर्ष और जिनहर्ष पूर्व में पिता-पुत्र रहें हों, दीक्षा एक साथ हुई हो अथवा पुत्र की दीक्षा कुछ समय के भीतर ही हुई हो तो दोनों की हर्षनन्दी हो सकती है ।

इनकी अनेकों कृतियाँ प्राप्त होती है । रास साहित्य पर तो इनका एकाधिकार था । कुमारपाल रास (रचना संवत् १७४२) यह रास आनन्द काव्य महोदधि में प्रकाशित हो चुका है । इनकी रास संज्ञक रचनाएँ ७० के लगभग हैं । स्फुट रचनाएँ लगभग ४०० हैं । स्फुट रचनाओं का संग्रह भी अगरचन्दजी नाहटा द्वारा सम्पादित जिनहर्ष ग्रन्थावली में प्राप्त है । इसका प्रकाशन विक्रम संवत् २०१८ में सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर से हुआ था । इनकी समस्त कृतियों के नाम की जानकारी के लिये देखें **खरतरगच्छ साहित्य कोश** । यह दोधक बावनी जिनहर्ष ग्रन्थावली में दूहा बावनी के नाम से पृष्ठ ९४ से ९९ तक प्रकाशित है । दोधक संस्कृत का रूप है जब कि दोहा भाषा का रूप है ।

अतः यह कहा जा सकता है कि दोधक बावनी के कर्ता जसराज खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति परम्परा के उ. शान्तिहर्षगणि के शिष्य थे, और इनकी शिष्य परम्परा कुछ वर्षों पूर्व ही निःशेष हुई है । भविष्य में सम्पादिका संशोधन करने का कष्ट करेंगी ।

—X—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

उ. चरित्रनन्दी की गुरुपरम्परा एवं रचनाएं

अनुसन्धान के अंक ३५, सन् २००६ में पृष्ठ ३१ से ४८ तक महोपाध्याय चारित्रनन्दी विरचित **चतुर्दश पूर्व पूजा** प्रकाशित हुई है । इसके सम्पादक हैं आचार्य श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी म. । दुर्लभ एवं महत्त्वपूर्ण पूजा का सम्पादन कर आचार्यश्री ने साहित्यिक जगत् पर उपकार किया है।

पूजा के पूर्व में कवि की गुरु परम्परा देते हुए सम्पादक ने लिखा है :- 'खरतरगच्छना जिनराजसूरि, तेमना पाठक रामविजय, तेमनी परम्परा क्रमशः सुखहर्ष (?)-पदमहर्ष-कनकहर्ष-महिमहर्ष-चित्रकुमार-निधिउदय (के उदयनिधि ?)-चारित्रनन्दी आम पंक्तिओ परथी उकले छे. आमां क्षति होय तो सुधारी शकाय ! संवत १८९५ मां आ पूजा कविए रची छे ते तेमणे ज नोध्युं छे.'

इस वाक्यावली में प्रयुक्त आमां क्षति होय तो सुधारी शकाय ! शब्दों ने ही मुझे प्रेरित किया है ।

खरतरगच्छ के गणनायक जिनसिंहसूरि के पट्टधर जिनराजसूरि हुए। जिनराजसूरि की ही शिष्यपरम्परा में उपाध्याय निधिउदय हुए । सम्भव है इनका बाल्यावस्था का नाम नवनिधि हो । इन्हीं के शिष्य उपाध्याय चारित्रनन्दी हुए जो चुन्नीजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध थे । चारित्रनन्दी जैन न्यायदर्शन, काव्य, व्याकरण और पूजा साहित्य के उद्भट विद्वान् थे । उनके समय में काशी में जैन विद्वानों में इनका अग्रगण्य स्थान था । इनका साहित्य सृजन काल १८९० से लेकर १९१५ तक है ।

खरतरगच्छ साहित्य कोश के अनुसार चारित्रनन्दी की निम्न रचनाएं प्राप्त होती हैं :-

१. **स्याद्वादपुष्पकलिकाप्रकाश स्वोपज्ञ टीकासह,** न्यायदर्शन, संस्कृत, १९१४, अप्रकाशित, हस्त. सिद्धक्षेत्र साहित्यमन्दिर, पालीताणा, जिनयशसूरिज्ञान भं., जोधपुर
२. **प्रदेशी चरित्र,** भाषा-संस्कृत, सर्ग ९, रचना संवत् १९१३, स्थान स्तम्भतीर्थ । अप्रकाशित, श्री पुण्यविजयजी संग्रह, एल.डी. इन्स्टीट्यूट,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहमदाबाद, क्रमाङ्क ४५९३

३. **सद्रत्नसार्द्धशतक,** प्रश्नोत्तर, संस्कृत, १९०९ इन्दौर, अ., ह. आचार्यशाखा ज्ञान भं., बीकानेर, कान्तिसागरजी संग्रह

४. **श्रीपालचरित्र,** कथा चरित्र, संस्कृत, १९०८, अप्रकाशित, हस्त. कान्तिविजय संग्रह, बड़ौदा १९१०, स्वयं लि.

५. **चतुर्विंशति जिन स्तोत्र,** स्तोत्र, संस्कृत, १९वीं, अप्रकाशित, हस्त. खरतरगच्छ ज्ञान भं., जयपुर

६. **प्रश्नोत्तररत्न,** प्रश्नोत्तर, हिन्दी, २०वीं, अप्रकाशित, हस्त. सदागम ट्रस्ट, कोडाय

७. **चौवीसी-जिन स्तवन चौवीसी,** चौवीसी साहित्य, हिन्दी, २०वीं अप्रकाशित, हस्त. खजांची संग्रह रा.प्रा.वि.प्र., जयपुर

८. **इक्कीसप्रकारी** पूजा, पूजा, प्राचीन हिन्दी, १८९५ बनारस, अप्रकाशित, हस्त. विनय. प्रतिलिपि, हरिसागरसूरि ज्ञान भं., पालीताणा

९. **एकादश अङ्गपूजा,** पूजा, हिन्दी, १८९५, अप्रकाशित (अनु. ३५ में प्रकाशित), हस्त. नाहर संग्रह, कलकत्ता

१०. **चौदह पूर्व पूजा,** पूजा, हिन्दी, १८९५, अप्रकाशित, (अनुसं. ३५ में प्रकाशित) हस्त. नाहर संग्रह, कलकत्ता

११. **नवपद पूजा,** पूजा, राजस्थानी, २०वीं, अप्रकाशित, उल्लेख, जैन गुर्जर कविओ भाग-३, पृ. ३३६

१२. **पंच कल्याणक पूजा,** भाषा-प्राचीन हिन्दी, रचना संवत् १८८९ कलकत्ता, महताबचन्द के आग्रह से । अप्रकाशित, विनय प्रतिलिपि

१४. **पञ्च ज्ञान पूजा,** पूजा, हिन्दी, १९वीं, मुद्रित, जिन पूजा महोदधि, हस्त., विनय. प्रतिलिपि

१५. **समवसरण पूजा,** प्राचीन हिन्दी, १९१...खम्भात, अप्रकाशित, हस्त. नाहर संग्रह, कलकत्ता

१६. **नवपद चैत्यवन्दन स्तवन स्तुति, गीत स्तवन,** प्राचीन हिन्दी, २०वीं, मु., हरिसागरसूरिज्ञान भं., पालीताणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरे समक्ष प्रदेशी चरित्र, पञ्चकल्याण पूजा, पञ्चज्ञान पूजा और इक्कीस प्रकारी पूजा-चार कृतियाँ है । अतः इन चारों कृतियों के आधार पर ही उनकी गुरु परम्परा और उनके दीक्षान्त नामों पर विचार किया जाएगा ।

कवि ने अपनी पूर्व गुरु परम्परा देते हुए प्रदेशी चरित्र में लिखा है :-

श्रीमत्कोटिकसद्गणेन्दुदुकुलश्रीवज्रशाखान्तरे
मार्त्तण्डर्षभसन्निभः खरतरव्योमाङ्गणे सूरिराट् ।
श्रीमच्छ्री**जिनराजसूरि**रभवच्छ्री**सिंह**पट्टाधिपः
श्रीजैनागमतत्त्वभासनपटुः स्याद्वादभावान्वितः ॥३३॥

तत्पादाम्बुजहंस**रामविजयः** संविग्नसद्वाचको-
ऽभूज्जैनागमसागरप्रमथनैस्तत्त्वामृतस्वीकृतः ।
तद्वैनेयसुवाचको गुणनिधिः श्री**पद्महर्षो**ऽभवत्
यः संविग्नविचारसारकुशलः पद्मोपमो भूतले ॥३४॥

तच्छिष्यः **सुखनन्दनो** मतिपटुः सद्वाचको विश्रुत-
स्तत्त्वातत्त्वविचारणे पटुतरोऽभूत्तत्त्वरत्नोदधिः ।
तद्वैनेयसुवाचकोऽब्धिजनकाद् वादीन्द्रचूडामणि-
ज्ञानध्यानसुरङ्गरङ्गतदृशोऽभूदात्मसंसाधकः ॥३५॥

तत्पट्टे **महिमा**भिध**स्तिलक**युक् सद्वाचकोऽभूद्वरः
शिष्याणां हितकारको मुनिजनाच्छिक्षाप्रवृत्तौ पटुः ।
तत्पट्टे **कुम**रोत्तरो मुनिवरोपाध्याय**चित्रा**भिधः
ख्यातोऽभूद्धरणीतले शमयुतो ब्रह्मक्रियायां रतः॥३६॥

तत्पादाम्बुजभृङ्गसेवनपरोपाध्याय**निद्धयुदयो**
मिथ्यावादविनिर्जितेन विहितोऽर्हच्छासनोद्द्योतकम् ।
तच्छिष्यः सरहंसकिङ्करसमोपाध्यायचारित्रकः
चक्रेऽहं चरितं प्रदेशिनृपतेर्जैनागमाब्धेर्मुदा ॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अनुसार पूर्व गुरु परम्परा इस प्रकार बनती है :-

जिनसिंहसूरि (युग. जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर)

↓

जिनराजसूरि

↓

उ. रामविजय

↓

उ. पद्महर्ष (संविग्न)

↓

उ. सुखनन्दन

↓

उ. महिमतिलक

↓

उ. चित्रकुमार

↓

उ. निधिउदय

↓

उ. चारित्रनन्दी

इस चतुर्दश पूर्व पूजा में उल्लेखित सुखनन्दन और महिमतिलक के बीच में कनककुमार का नाम नहीं मिलता है ।

पंचकल्याण पूजा रजना प्रशस्ति में इस प्रकार उल्लेख है :-

तसु आज्ञायें भगति उदार स्तुति कल्याणक संघ हितकार । भ० १०
ग्याननिधिगुणमणिभंडार **महिमतिलक** पाठक सुखकार । भ० ११
ततपंकज मधुकर सुखपीन **चित्रकुमर लबधी** गुणलीन । भ० १२
ततपद **निधिउदयज** भांन जिनआज्ञाप्रतिपालक जांन । भ० १३
भावनन्दी गुरुपदअनुरक्त भ्रातृ चारित्रनंद कीधी जिनभक्ति । भ० १४

इसमें महिमतिलक के बाद की ही गुरु परम्परा दी है और भावनन्दी को अपना गुरुभ्राता बतलाया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचज्ञान पूजा रचना प्रशस्ति में लिखा है :-

खरतरपति **जिनसिंहपटधार** श्री **जिनराजसूरिंद** सुखकार । भ० ६
तसु पदपंकज मधुप सुशिष्य पाठक रामविजय गुणमुख्य । भ० ७
तसु शिष्य वरवाचकश्री **पद्म-हरख** हरखधर शिवसुखसद्म । भ० ८
तसु वैनेय पाठकपदधार **सुखनंदन** गुणमणिभंडार । भ० ९
तसुपद **कनकसागर** अभिधान पाठकपदधारक सुविहान । भ० १०
तसुपद सरकजहंससमान पाठक **महिमतिलक** गुणखान । भ० ११
कुमरुत्तर तसु उभय सुशिष्य **चित्रलबधि** पंडितजनमुख्य । भ० १२
तसुशिष्य **निधिउदयगणि** जाणि गुरुपदकजमकरं समान । भ० १३
तासुशिष्य वर **चारित्रनन्द** पणनाणस्तुति रचि आनंद । भ० १४

इसमें अपनी परम्परा जिनसिंहसूरि से ही प्रारम्भ की है । सुखनन्दन के बाद कनकसागर का नाम दिया है और चित्रकुमार तथा लब्धिकुमार को गुरु भ्राता लिखा है ।

इक्कीस प्रकारी पूजा की रचना प्रशस्ति में लिखा है :-

गच्छेशसत्**खरतरा**ह्वयगच्छसिद्धः भव्याब्जकाननमलंकृतभानुरूपः ।
आचारपञ्चशुभपालनसावधानो सूरीन्द्रराज**जिनराज**मभूत्प्रसिद्धः ॥२॥

वादीन्द्रवृन्दघटमुद्गरतुल्यभावं तच्छिष्य**रामविजयो** वरवाचकोऽभूत् ।
सिद्धान्ततत्त्वसद्भावितधीप्रचण्डस्तच्छिष्यवाचकवरोऽभूत्**पद्महर्षः** ॥३॥

जैनेन्द्रशासनप्रकाशकचन्द्रतुल्यस्तच्छिष्यवाचकवरो **सुखनन्दनो**ऽभूत् ।
श्रीपाठकः **कनकसागर** तस्य शिष्योऽभूद्भव्यपङ्कजसमूहविबोधभानुः ॥४॥

सद्वाचकोऽग्रतिलको **महिमा**भिधानोऽभूद्दीक्षितौ प्रवचनाष्टसुमातृचारिः ।
जैनेन्द्रशासनविभासकचन्द्रतुल्यौ शिष्यावभूत्**सुकुमरुत्तरलब्धिचित्रौ** ॥५॥
शौण्डीर्यधैर्यगुणरत्नकरण्डकेयस्तच्छिष्य**निद्धिउदया**ह्वयभू जयन्तु ।
चारित्रनन्दिविनयेन विनिर्मितेयं अर्हत्सुनेमिदिवसेषु धृतिग्रहेषुः ॥६॥

इस प्रशस्ति में जिनराजसूरि से अपनी परम्परा प्रारम्भ की है । इसमें भी सुखनन्दन के बाद कनकसागर का नाम दिया गया है । चित्रकुमार और लब्धिकुमार को गुरुभ्राता लिखता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खरतरगच्छ दीक्षा नन्दी सूची में (जो कि बीकानेर बड़ी गद्दी, आचार्य शाखा और जिनमहेन्द्रसूरि मण्डोवरी शाखा का) इन नामों का उल्लेख न होने से स्वयं संदेहग्रस्त था कि यह परम्परा जिनराजसूरि परम्परा, जिनसागरसूरि परम्परा और जिनमहेन्द्रसूरि की परम्परा में नहीं थे किन्तु किस परम्परा के अनुयायी थे यह मेरे लिए प्रश्न था । किन्तु पंचकल्याणक पूजा में कवि ने स्वयं यह उल्लेख किया है :-

श्री**अक्षयजिन**चन्द्रं पंचकल्याणयुक्तं
सुनिधिउदयवृद्धिं **भावचारित्रनन्दी** ।
भवजलधितरण्डं भक्तिभारैः स्तुवंति
अविचलनिधिधामं ध्याययन्प्राप्नुवन्ति ॥१॥
गणाधीशौदार्यो गुणमणिगणानां जलनिधिः
गभीरोभूच्छ्रीमान्प्रवरजिनराजाक्षगणभृत्
सुरिन्द्रस्तत्पट्टे द्युमणिजिनरंगः सुरतरुः
बृहद्गच्छाधीशो **खरतर**गणैकाम्बुजपतिः ॥२॥
क्रमादायातं श्री**जिनअखयसूरी**न्द्रगणभृ-
दभून्नृणां तापं तदुपशमनं पूर्णशशिभृत्
गभस्तिस्तत्पट्टे भविकजसुबोधैकरसिको
भुवौ विख्यातं श्रीप्रवर**जिनचन्द्रो** विजयते ॥३॥

अर्थात् जिनराजसूरि के पश्चात् शाखाभेद होकर जिनरङ्गसूरि शाखा का उद्भव हुआ । जिनरङ्गसूरि परम्परा में श्रीजिनाक्षयसूरि के पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरि के विजयराज्य में यह पूजा रची गई । चारित्रनन्दी की परम्परा जिनरङ्गसूरि शाखा की आदेशानुयायिनी रही । इस शाखा की दफ्तर बही प्राप्त न होने से इस परम्परा के उपाध्यायों का दीक्षा काल का निर्णय नहीं कर सका ।

१९वीं शताब्दी के अन्त में और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में काशी में चारित्रनन्दी और जिनमहेन्द्रसूरि अनुयायी नेमिचन्द्राचार्य और बालचन्द्राचार्य कुशलपश्यति, जैन विद्वानों में विख्यात थे अर्थात् इनका बोलबाला था । इसी समय के विजयगच्छीय उपाध्याय हेमचन्द्रजी का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलकत्ता में प्रौढ़ विद्वानों में स्थान था ।

चारित्रनन्दी के शिष्य चिदानन्द प्रथम थे । जिनका प्रसिद्ध नाम कपूरचन्द था । वे क्रियोद्धार पर संविग्नपक्षीय साधु बन गए थे और उनका विचरण क्षेत्र अधिकांशतः गुजरात ही रहा । चिदानन्दजी प्रथम अच्छे विद्वान् थे अध्यात्म ज्ञानी थे और उन्हीं पर उनकी रचनाएं होती थी । उनकी लघु रचनाओं बहोतरी का संग्रह भी चिदानन्द (कर्पूरचन्द्रजी) कृत पद संग्रह (सर्व संग्रह) भाग १ एवं २ जो कि श्री बुद्धि-वृद्धि कर्पूरग्रन्थमाला की ओर से शा. कुंवरजी आनंदजी भावनगर वालों की ओर से संवत् १९९२ में प्रकाशित हुआ है । चिदानन्दजी प्रथम द्वारा निर्मित साहित्य के लिए देखें खरतरगच्छ साहित्य कोश ।

चारित्रनन्दी का बाल्यावस्था का नाम चुन्नीलाल होना चाहिए । काशी में इनका उपाश्रय ज्ञानभण्डार भी था । जो चुन्नीजी के नाम से चुन्नीजी महाराज का उपाश्रय एवं भण्डार कहलाता था । चारित्रनन्दी के पश्चात् परम्परा न चलने से उस चुन्नीजी के भण्डार को तपागच्छाचार्य श्रीविजयधर्मसूरिजी महाराज काशी वालों ने प्राप्त किया और उसे आगरा में विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञान मन्दिर के नाम से स्थापित किया । प्रसिद्ध तपागच्छाचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी महाराज ने प्रयत्नों से उस विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञान मन्दिर, आगरा की शास्त्रीय सम्पत्ति को भी प्राप्त कर लिया जो आज श्री कैलाशसागरसूरि ज्ञान मन्दिर, कोबा को सुशोभित कर रहा है ।

★

(३)

कल्याणचन्द्रगणि

मुनि श्री कल्याणकीर्तिविजयजी ने अनुसन्धान अंक ३७, पृष्ठ १० से १५ तक श्री नवफणापार्श्वनाथस्तव के नाम से एक दुर्लभ एवं अप्रकाशित कृति का सम्पादन कर प्रशस्य कार्य किया है । इस कृति से सम्बन्धित मन्दिर, स्तव, कीर्तिरत्न और कल्याणचन्द्र के सम्बन्ध में जो भी ऐतिह्य सामग्री प्राप्त है, वह निम्न है :-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. **नवखण्डा पार्श्वनाथ मन्दिर** - संघपति मण्डलिक ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था और इसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १५१५ आषाढ़ वदि १ को श्री जिनभद्रसूरि के पट्टधर भी जिनचन्द्रसूरि ने करवाई थी । संघपति मण्डलिक जयसागरोपाध्याय के बृहद्भ्राता थे । वर्तमान में ये मन्दिर आबू में चौमुखजी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है । वस्तुतः यह मण्डलिक द्वारा निर्मापित मन्दिर खरतरवसही ही है । मन्दिरस्थ मूर्तियों के लेख खरतरगच्छ प्रतिष्ठा लेख संग्रह, लेखाङ्क ५३७ से ५५६ तक प्रकाशित हैं ।

२. **स्तोत्र में छन्द** - अनुसन्धान के पृष्ठ १० में इस स्तोत्र के २२ से २४ पद्य वस्तु छन्द में लिखे हैं, किन्तु यति का उल्लेख नहीं किया है। वस्तुतः वस्तु छन्द प्रसिद्ध नाम है । इसी छन्द के भेदों में चारुसेना-रड्डा छन्द है । यह छन्द ९ चरणों का होता है, प्रारम्भ के पाँच चरण चारुसेना रड्डा के और अन्तिम ४ चरण दोहा के होते हैं । इन चरणों की यति १५, ११, १५, ११, १५ होती है और शेष दोहे के चार चरण होते हैं । इसके प्रथम चरण की प्रथम पंक्ति में ८ अक्षरों की पुनरुक्ति / पुनरावर्तन होता है :-

वंसु उत्तमु वंसु उत्तमु पुहविसुपसिद्ध,
घण-कंचण-घण-रयण, सयणवग्गु उ मग्गमुत्तउ
बहु मन्नइ धुरि नरह, नरवरिंदु आणंदजुत्तउ ।
सामिसलाहण-म(भ?)त्ति इध फलु इत्तलउ लहंति ।
भवियण जिण ! माहप्पु तुह कह मारिस जाणंति ? ॥२२॥

पद्यांक २२-२३-२४ इसी छन्द में हैं ।

प्रशस्ति संस्कृत का छन्द हरिगीत लिखा है । यह मात्रिका छन्द हरिगीता है, चतुष्पदी है, प्रत्येक छन्द में २८ मात्राएँ होती है और यति ९, ७, १२ पर होती है । (देखें महोपाध्याय विनयसागर सम्पादित **वृत्तिमौक्तिक**)

३. **कीर्तिरत्न** - नेमिनाथ महाकाव्य और लक्ष्मणविहारप्रशस्ति जैसलमेर के प्रणेता कीर्तिराज ही कीर्तिरत्नसूरि हैं । इनका अतिसंक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

शंखवालेचा गोत्रीय देपमल्ल के ये पुत्र थे । विक्रम संवत् १४४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में इनका जन्म हुआ था । १४६३ में जिनवर्धनसूरि के कर-कमलों से इनकी दीक्षा हुई थी । जिनवर्धनसूरि ने १४७० में इन्हें वाचक पद प्रदान किया था । १४८० में जिनभद्रसूरि ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था । १४९७ में जिनभद्रसूरि ने ही इनको आचार्य पद प्रदान कर कीर्तिरत्नसूरि नामकरण किया था । संवत् १५१२ में नाकोड़ा पार्श्वनाथ मन्दिर की स्थापना / प्रतिष्ठा भी इनके वरद हस्तों से हुई थी । इनका स्वर्गवास १५२५ वीरमपुर में हुआ था । इसकी १५३६ की प्रतिष्ठित मूर्ति नाकोड़ा पार्श्वनाथ मन्दिर के मूल गर्भगृह के बाहर ही नाकोड़ा भैरवदेव के सामने ही स्थापित है । इनके द्वारा निर्मित साहित्य के लिए देखें म. विनयसागर लिखित- **खरतरगच्छ साहित्य कोश** ।

कल्याणचन्द्र - सम्पादक ने पृष्ठ ११ पर लिखा है :- "कीर्तिरत्नना शिष्य कल्याणचन्द्रे आ स्तवनी रचना करी हशे" स्तव के २५वें पद्य में कवि ने लिखा है-

"श्रीकीर्तिरत्नसुखानि दिशतादिह परत्र पदं परं ।
कल्याणचन्द्रवितन्द्रवदनाकृतिरयं भवतां वरम् ॥२५॥"

कल्याणचन्द्रगणि कीर्तिरत्नसूरि के ही शिष्य थे । संस्कृत और भाषा साहित्य के प्रौढ विद्वान् थे । इनके द्वारा निर्मित कई कृतियाँ प्राप्त होती है। स्वर्गीय श्री अगरचन्दजी भँवरलालजी नाहटा द्वारा सम्पादित **ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह** के पृष्ठ ५१ पर श्रीकीर्तिरत्नसूरि चौपई प्रकाशित हुई है । उसके पद्य १८ में लिखा है :-

'श्री कीर्तिरतन सूरि चउपइ, प्रह उठी जे निश्चल थई ।
भणइ गुणइ तिहि काज सरंति, **कल्याणचन्द्र** गणि भगतिभणंति ॥१८॥'

इनके परिचय के सम्बन्ध में खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास पृष्ठ ३५१ और साहित्य निर्माण के लिए देखें खरतरगच्छ साहित्य कोश ।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४)

सम्पादकीय टिप्पणी : चिन्तन

अनुसन्धान अंक ३६ सन् २००६ के अंक में **परयोगीराज श्री आनन्दघनजी अष्टसहस्त्री पढ़ाते थे** शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है उस विद्वान् सम्पादक आचार्य श्री विजयशीलचन्द्रसूरिजी महाराज ने निम्न टिप्पणी लिखी है :-

सम्पादकनी नोंध :

एक बीजी विशिष्ट वात ए नोंधवी छे के अमारा परमगुरु शासनसम्राट विजयनेमिसूरि महाराजनुं चरित्रलेखन करवानो प्रसंग आव्यो, त्यारे तेमना जीवननी दस्तावेजी नोंधनां पृष्ठो फेरवतां एक विलक्षण वात नोंधायेली मळी आवी. ते वात आवी छे : "तपगच्छना धुरन्धर अने उद्भट विद्वान् उपाध्यायश्री धर्मसागरजी महाराज, आनन्दघनजी पासे भगवतीसूत्रनी वाचना लेता हता. पोते दीक्षा तथा वयमां वडील अने आनन्दघन घणा नाना, छतां तेमने पाटला पर बेसाडी पोते विनयपूर्वक सामे बेसीने वाचना लेता हता."

अलबत्त, आ वात दन्तकथा छे के हकीकत, तेनो निर्णय करवानुं कोई साधन नथी ज. परन्तु नेमिसूरिमहाराज पासे परम्परागत आ वात आवी होई ते साव निराधार होय तेम पण मानवुं ठीक नथी.

धर्मसागरजीने भगवतीसूत्र न आवडतुं होय ते तो शक्य ज नथी; पण आनन्दघनजी पासे कोई विलक्षण रहस्यबोध हशे, अने ते कारणे ज आवा वृद्ध पुरुष पण तेमनो लाभ लेवा प्रेराया हशे एम बनवाजोग छे. अस्तु. –शी.]

यह सौभाग्य की बात हो सकती थी कि कल्पसूत्र टीका किरणावलीकार श्री धर्मसागरोपाध्याय जैसे विद्वान् लाभानन्द / आनन्दघनजी के पास भगवतीसूत्र की वाचना लेते थे ।

किन्तु इस कथन में सबसे बड़ा बाधक समय बन रहा है क्योंकि दिग्गज विद्वान् उपाध्याय श्री धर्मसागरजी का साहित्य सर्जनाकाल १७वीं शताब्दी के प्रथम दशक से १६५० तक माना गया है और इनका स्वर्गवास काल संवत् १६५३ । स्व. श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई लिखित जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ ५६३ पैरा नं. ८२१ में लिखा है :- 'धर्मसागरजी खंभात मा संवत् १६५३ कार्तिक सुद ९ ने दिने स्वर्गवास पाम्या ।'

जबकि योगनिष्ठ स्व. श्री बुद्धिसागरसूरिजी महाराज, स्व. श्री मोतीचन्द गिरधर कापड़िया तथा स्व. श्री नाहटा जी ने आनन्दघनजी का समय १६५० से १७३१ तक का माना है । अतः दोनों के समय में व्यवधान पैदा होता है ।

यदि हम पूज्य शासन सम्राट् के कथन को स्वीकार करें तब किसी अन्य धर्मसागर की खोज करनी होगी जो कि उस समय में उपलब्ध नहीं थे । अतः सम्पादक के लेखानुसार इसे दन्तकथा या श्रुति-परम्परागत स्वीकार करना ही अधिक उपयुक्त होगा, पाठक स्वयं निर्णय करें । तत्त्वं तु गीतार्थगम्यम् अथवा सुज्ञेषु किं बहुना ।

ठि. प्राकृत भारती
१३-A, मेन मालवीय नगर
जयपुर (राजस्थान)

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहंगावलोकन

– उपा. भुवनचन्द्र

'अनुसन्धान'ना ३७मा अंकमां जैन श्रमणोनी प्रायश्चित्तविधिना सारसंक्षेप जेवी बे प्राकृत रचनाओ प्रसिद्ध थई छे. श्रमणसंघमां प्रायश्चित्तविधि केवी दृढमूल अने सुप्रथित हती तेनुं प्रतिबिम्ब आ रचनाओमां जोई शकाय छे. प्रथम कृति– 'पञ्चकपरिहाणि'–ना कर्ता गच्छपति आचार्य छे. विषय अने भाषा परनुं प्रभुत्व तो नोंधपात्र छे ज, विशेष ध्यानार्ह तो छे कर्तानी निर्भार अभिव्यक्ति, प्रफुल्ल रसदृष्टि, प्रायश्चित्त जेवा विषयनी काव्यात्मक रजुआत जे रीते आमां थई छे तेमां साधुहृदय अने कविहृदयनो मनोहर संयोग आपणने जोवा मळे छे. विधिनिषेधोथी रसिकता मुरझाई ज जाय एवो नियम नथी ए आनो सारांश.

'पञ्चकपरिहाणि'मां गा. २मां 'पंचगण०' छपायुं छे त्यां ण वधारानो छे – लिपिकार अथवा सम्पादकना हस्ते अनवधानवश प्रवेश्यो जणाय छे. गा. ११मां 'परिहाणी'ने बदले 'पणिहाणी' लखायुं छे. वर्णसादृश्यना कारणे आवी गरबड़ो बोलवामां थती होय छे तेम, लखवामां पण थाय छे, तेनुं आ सरस उदाहरण छे. गा. ८मां 'समयरकटा' प्रेसदोषथी थयुं छे, मूळ शब्द 'समयक्खय' होवानो सम्भव.

'पञ्चकपरिहाणि' गोचरीना दोषोनी प्रायश्चित्तविधि जणावे छे. 'आलोचणाविहाण' हरेक प्रकारनी आलोयणा-प्रायश्चित्त-अंगेनी सामान्य विधि बतावे छे. सम्पादके नोंध्युं छे के हस्तप्रतमां आ बे कृतिनी साथे प्रायश्चित्तोनी छूटक नोंधो पण छे. आना परथी कल्पना एवी पण आवे के कोई विद्वान गीतार्थ मुनिवरे आलोचना सम्बन्धित साहित्य एकत्र कर्युं होय.

आठ भाषाओमां रचायेल नवफणा पार्श्वनाथ स्तोत्र भक्तिरस अने काव्यरस बन्नेथी परिपूर्ण अने विद्वत्ताथी विभूषित रचना छे. मागधीभाषाना श्लोकोनो छन्द मालिनी ज छे, मात्र तेमां एक यगणना छेल्ला गुरुवर्णनी जग्याए बे ह्रस्व-लघु वर्ण प्रयोजाया छे. मात्रा मेळ छन्दोनी परम्परा आ रीते ज शरू थई हशे ने ?

श्लोक ९ नुं चोथुं चरण आ रीते वांचवाथी अर्थ बेसी शके छेः दुक्खा उ किं न भुजगं व समुद्धरेसि. श्लोक. २४ मां 'कट्ठउ' मां उ वधारानो जणाय छे.

'हयाटाखाट' काव्य कौतुक ऊपजावनारुं छे. संस्कृत भाषानी शब्दसर्जनक्षमतानो श्रेष्ठ नमूनो गणावी शकाय एवुं काव्य छे.

'सूक्तिद्वात्रिंशिका' एक रसप्रद कृति छे. सम्पादके आनी भाषा अपभ्रंशप्रधान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकबोली गणावी छे किंतु आ रचना प्रादेशिकभाषाओ स्थापित थया पछीना समयनी छे, उच्चारभेदवाळी अवधी के व्रजभाषा होई शके. कवि जैन मुनि छे तेथी संस्कृत-प्राकृतनो प्रभाव पण तेमां जोवा मळे ए सहज छे, उपरांत अरबी-फारसी सुद्धांनो प्रभाव पण आमां छे : गरीबनिवाज़, चीज़, रुख जेवा शब्दो अन्य भाषानां छे. कर्ताए 'सुदंतबत्रीसी' पण रची छे-एम ३३मा दोहानी वृत्तिमां कर्ताए जणाव्युं छे.

शब्दोनी सूचिमां सम्पादके 'रुषि'=कृपा एवो अर्थ नोंध्यो छे. रचनामां आ शब्द ३-८, १० दोहामां वपरायो छे. 'रुष'=रुख एम वांचवानुं छे. दो. १०नी वृत्तिमां कर्ताए 'रुख'नो अर्थ आप्यो ज छे : 'रुखशब्देन मनःपरिणतिः चित्तेच्छेति.' अर्थात् रुख एटले मनोभाव, वलण, लागणी एवो सामान्य अर्थ लेवानो छे. पछी कृपा जेवो विशेषार्थ लक्षणा द्वारा लई शकाय - जेम दो. ४ नी वृत्तिमां लीधो छे. दो. १३नी वृत्तिमां 'तथाऽनुक्तमपि' छपायुं छे. अनुक्त शब्द अहीं अर्थसंगत नथी. 'तथाऽवक्रमपि' एवो पाठ संगत बने. १४नी उत्थानिकामां '०ठन्तरदोधके' ने स्थाने '०नन्तरदोधके' ठीक लागे छे. दो. १७नी वृत्तिमां 'परं काङ्क्षिद्' पाठ छे पण सन्दर्भ अनुसार 'परं न काङ्क्षिद्' जोइए. दो २४मां 'समदुहु' छे त्यां 'सम दुहु' एम छूटुं समजवुं. वृत्तिमां 'सनः' छपायुं छे ते मुद्रणदोष छे, 'समः' वांचवुं. दो. ३२मां 'सुधासद भाउ' एय छपायुं छे, ते वाचनभूल लागे छे. अर्थानुसार 'सुधासुभाउ' शब्द अहीं होवो घटे.

'मेदपाटतीर्थमाल'ना सम्पादके लेखनी भूमिकामां मेवाडनां तीर्थोनी कृतिगत विगतोनी साथे साथे ते ते तीर्थोनी वर्तमान विगतो पण आपी छे - आ तेमना श्रम अने प्रेमनुं फल छे. भव्य भूतकालनी सामे वर्तमान मेवाडनी तुलना करतां सम्पादक भावुक बन्या विना रही शक्या नथी. श्लो. १९मां एक तीर्थनुं नाम नचेपुर (?) कल्प्युं छे परंतु श्लोकमां एवुं नाम नथी. 'नाम्नार्थेन च या पुरे०' एवो पाठ छे संस्कृतमां 'या'नो अर्थ शुं थाय छे ते जोवानुं साधन हमणां हाथवगुं नथी. 'या'नो अर्थ लक्ष्मी थतो होय तो 'यापुर' नाम कल्पी शकाय अने नामथी तथा अर्थथी पण ए नाम बेसे. यापुर-जापुर-जाउर-जावरा एवी कल्पना पण करी शकीए. श्लो. ६मां 'श्री ईशपल्लीपुरनिश्चलासनम्' पाठ सम्भवित छे.

आ अंकमां गीताना विश्वरूपदर्शन अने जैन तत्त्वज्ञाननी तुलनात्मक चर्चा करतो एक अभ्यासलेख पण छपायो छे. लेखिकाए जैनदर्शननो दृष्टिकोण सारी रीते रजू कर्यो छे.

जैन देरासर, नानी खाखर, कच्छ : ३७०४३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहिती-१

भारतीय योग परम्परा के परिप्रेक्ष्य में जैन योग विषयक त्रिदिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी का पहली बार आयोजन

भोगीलाल लहेरचंद भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर तथा श्री जैन श्वेताम्बर नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ ट्रस्ट के संयुक्त तत्त्वावधान में ७, ८ व ९ दिसम्बर २००६ को नई दिल्ली स्थित इण्डिया इन्टरनेशनल सेन्टर में भारतीय योग परम्परा के परिप्रेक्ष्य में जैन योग विषयक त्रिदिवसीय अन्तराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ, इसमें देश-विदेश के ६० से अधिक विद्वान सम्मिलित हुए तथा २६ विद्वानों ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए. ७ दिसम्बर को कार्यक्रम का प्रारम्भ सुश्री दीपशिखा के द्वारा नवकार मन्त्र तथा मङ्गलाचरण से हुआ. मुख्य अतिथि स्वामी वेदभारती ने अपने अध्यक्षीय प्रवचन में कहा कि जैन योग भारत की अन्य परम्पराओं में अल्पश्रुत है अतः जैन योग की गौरवमयी परम्परा से इस संगोष्ठी के द्वारा हम परिचित हो सकेंगे. सुप्रसिद्ध समालोचक एवं साहित्यकार प्रो. नामवर सिंह ने कहा कि प्राकृत भाषा की हमारे देश में बड़ी उपेक्षा हुई है जब कि विदेशों में लोगों का इस ओर बड़ा रुझान हैं. भारत की भाषा को ही भारत में आज लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता खड़ी हुई है।

संस्थान के अध्यक्ष श्री निर्मल भोगीलाल ने आधुनिक विश्व में व्यवसाय के क्षेत्र में भी योग के महत्त्व पर बल दिया. उपाध्यक्ष श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन ने अभ्यागत विद्वानों का स्वागत किया तथा श्री प्रकाशचंद वडेरा, अध्यक्ष, नाकोडा तीर्थ ने नाकोडाजी ट्रस्ट द्वारा हो रहे शैक्षणिक तथा सामाजिक कार्यों का वृत्तान्त प्रस्तुत किया. आत्मवल्लभ जैन स्मारक शिक्षण निधि के महासचिव श्रीराजकुमार जैन ने वल्लभ स्मारक परिसर में निधि द्वारा संचालित हो रही प्रवृत्तियों से उपस्थित महेमानों को परिचित करवाया.

प्रो. क्रिस्टोफर के. चैपेल ने अपने चाबीरूप प्रवचन में भारतीय योग परम्परा के परिप्रेक्ष्य में जैन योग का विस्तृत सर्वेक्षण प्रस्तुत किया. सर्वप्रथम आयोजित इस प्रकार की विशिष्ट संगोष्ठी का केन्द्रबिन्दु जैन योग तथा इसका अन्य परम्पराओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन था. इस संगोष्ठी में प्रमुख रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से प्रो. क्रिस्टोफर चैपल, प्रो. लॉरा कार्नेल, प्रो. पिओत्र बल्कोविज, समणी कुसुमप्रज्ञाजी, समणी मल्लिप्रज्ञाजी, प्रो. मुल्कराज मेहता, प्रो. विमला कर्णाटक, प्रो. कोकिला शाह, प्रो. शशिप्रभाकुमार, प्रो. दयानन्द भार्गव आदि ने विशेष रूप से अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए. इस कार्यक्रम में युवा जैन मुनि विद्वान गणिवर्य श्री यशोविजयजी म.सा., स्वामीनारायण सम्प्रदाय के षड्दर्शनाचार्य साधु श्री श्रुतिप्रकाशस्वामी तथा जैन विश्वभारती की वाईसचान्सलर समणी श्रीमङ्गलप्रज्ञाजी की ओर से भी शोधपत्र प्रेषित किये गए थे जो उनके प्रतिनिधियों द्वारा पढ़े गयें. अन्तिम दिन संगोष्ठी का समापन अहमदाबाद स्थित लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृतिविद्यामन्दिर के निदेशक डॉ. जे.बी. शाह के उद्बोधन से हुआ. आपश्री ने जैन योग पर आयोजित विद्वानों की इस संगोष्ठी की उपलब्धियों पर विस्तार से प्रकाश डाला तथा इसे आयोजित करने हेतु संस्थान की अनुमोदना की. धन्यवाद प्रदान करते हुए उपाध्यक्ष श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन ने कहा कि यह एक अच्छी शुरुआत है तथा आगे हमें अभी तक जैन योग के जिन क्षेत्रों में कार्य नहीं हुआ है उनकी खोज करनी है. प्रो. दयानन्द भार्गव आदि विद्वानों ने इस प्रकार के प्रथम आयोजन की सराहना करते हुए संस्थान की प्रगति की कामना की.

११वां आचार्य हेमचन्द्रसूरि पुरस्कार प्रदान समारोह सम्पन्न :

भोगीलाल लहेरचंद इन्स्टिट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी तथा जसवंता धर्मार्थ ट्रस्ट के संयुक्त तत्त्वावधान में प्रो. मधुकर अनन्त महेन्दले (पूना) को ग्याहरवें आचार्य हेमचन्द्रसूरि पुरस्कार से सम्मानित किया गया. यह पुरस्कार प्रतिवर्ष प्राकृत भाषा के समर्पित विद्वान को उसके अद्वितीय योगदान के लिए जसवंता धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा दिया जाता है. इस पुरस्कार में रू. ५१,०००/- की नगद राशि, आचार्य हेमचन्द्र की स्वर्ण मण्डित प्रतिमा तथा प्रशस्तिपत्र तथा शाल आदि सम्मिलित है. वर्ष २००५ के लिए इस पुरस्कार से प्रो. मधुकर अनन्त महेन्दले को स्वामी श्री वेदभारतीजी द्वारा सन्मानित किया गया. इस अवसर पर भाषाविद् प्रो. नामवर सिंह ने प्रो. महेन्दले की उपलब्धियों तथा गुणों पर प्रकाश डाला. प्रो. मधुकर महेन्दले भाण्डारकर ओरियन्टल रीसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना में ८९ वर्ष की आयु में आज भी कार्यरत हैं. प्राकृत भाषा के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहिती - २

नवां प्रकाशनो

(१) **उपदेशमाला** कर्ता : श्रीधर्मदासगणि; टीका : **हेयोपादेया** कर्ता : श्रीसिद्धर्षिगणि; सं. आ. विजयप्रद्युम्नसूरि; सम्पादनसहयोग : साध्वी चन्दनबालाश्री; प्र. श्रुतज्ञान प्रसारक सभा, अमदावाद, सं. २०६२; मूल्य रू. १५०/-

विभिन्न ६ हाथपोथीओना आधारे पुनः सम्पादित करीने आ टीका प्रकाशित करवामां आवी छे. आ ग्रन्थ (टीकाग्रन्थ) पूर्वे प्रकाशित थयेल होवानो 'सम्पादकीय' लखाणमां उल्लेख छे, पण कोणे अने क्यारे ते सम्पादन/ प्रकाशन करेल छे, तेनो निर्देश नथी. ते प्रकाशनमां रही गयेल त्रुटिओ-अशुद्ध अथवा त्रुटित पाठो-नुं संशोधन आ सम्पादनमां करवामां आव्युं छे, ते आ प्रकाशननी महत्त्वपूर्ण विशेषता छे. जो आवा पाठसंशोधननां एक-बे उदाहरणो सम्पादकीय निवेदनमां क्यांक दर्शावायां होत तो विशेष प्रतीतिकर बनत.

पाछळ मूकेलां ४ परिशिष्टो ग्रन्थनी उपयोगिता वधारी दे तेवां छे. तेमां चोथा परिशिष्टमां आना पूर्व-प्रकाशननी माहिती नोंधी छे.

(२) Catalogue of the Jain Manuscripts of the British Library : Vol. 1,2,3. by Nalini Balgir, K.V.Sheth, K.K.Sheth, C.B. Tripathi. प्रका. The British Library & The Institute of Jainology, London, 2006.

ब्रिटिश लायब्रेरी, ब्रिटिश म्यूजियम तथा विक्टोरिया एन्ड अल्बर्ट म्यूजियम, लण्डन-स्थित आ बधी संस्थाओमां संग्रहायेल जैन ग्रन्थोनी हस्त-प्रतिओनुं विस्तृत अने वर्णनात्मक सूचिपत्र आ त्रण ग्रन्थोमां उपलब्ध थयेल छे.

२५४ पृष्ठनो प्रथम भाग, सूचिपत्रगत प्रतिओ विषेनी दस्तावेजी जाणकारी पूरी पाडे छे. तेमां प्रारम्भे १६ प्लेट्स पण आपेल छे, जेमां ते संग्रहगत सचित्र प्रतोमांथी पसंद करेल चित्रो छापेल छे. उत्तम मुद्रण केवुं होय तेनो आ जोतां ख्याल आवे. आ भागमां हस्तप्रतोनुं संक्षिप्त सूचिपत्र पण आप्युं छे अने तेनां विविध वर्गीकरणो, Tables वगेरे पण छे. कोई कुशल अभ्यासी द्वारा आनी समीक्षा करावववानुं मन थाय छे.

भाग २ मां ४९१ भाग ३ मां ५३२ पानां छे. बीजो भाग आखो तथा भाग ३नां ३३२ पानां श्वेताम्बर साहित्य माटे रोकायां छे. त्यार पछीनो अंश दिगम्बर साहित्य माटे रोकायेल छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक प्रतनुं विस्तृत भौतिक वर्णन, प्रतिनी लखावटनुं तथा तेमां उपयुक्त रंगो वगेरेनुं वर्णन, ग्रन्थनो प्रारम्भ भाग (रोमन अक्षरोमां तथा डायाक्रिटिकल मार्क्स साथे), टीका होय तो तेनो प्रारम्भाग, ग्रन्थनी प्रशस्ति तथा पुष्पिका, ग्रन्थनो स्रोत, ग्रन्थना अन्य सन्दर्भ तथा विशेष नोंध - लगभग आ रीते सूचीकरण थयुं छे, जे अभ्यासी जनो माटे सन्दर्भनुं जबरुं भातुं पूरुं पाडे तेम छे.

मजबूत पाका बाइन्डिगवाळा आ ३ ग्रन्थो एक मजबूत Box मां उपलब्ध छे. भारतमां तेनुं मूल्य पांचेक हजार छे, तेम जाणवा मळे छे.

आ ग्रन्थोनो झीणवटभर्यो अभ्यास करवाथी ए ख्याल आवे के आपणुं केटलुं बधुं मूल्यवान सांस्कृतिक धन विदेशीओ लई गया छे ! अने तेमना कबजामां ते अद्यावधि केटलुं सुरक्षित पण रह्युं छे !

मळेली जाणकारी मुजब, आ अंग्रेज लोको, पोताने त्यांना ग्रन्थोनी झेरोक्स नकल कदापि करता नथी के करी आपता नथी, करवा देता नथी. 'तेनाथी कृतिने नुकसान थाय ज' तेम तेओ माने छे. उपरांत, एवां कोई पण उपकरणनो उपयोग तेओ पोथीओ परत्वे करवा तैयार नथी थता, जेनाथी पोथीओने जराक पण नुकसान थवानी शक्यता होय. डिजिटाइज नकलो करवा माटे पण तेओ झाझा उत्साहित न होवानुं जाणवा मळे छे.

आनी साथे आपणे त्यां जे चाले छे - अंधाधूंध, ते तो डघावी ज मूके तेवुं छे. ताडपत्र प्रतनी पण झेरोक्स काढीए छीए आपणे ! कागलनी प्रतनुं तो पूछवुं ज नहि ! केटलीये प्रतोने केवुं अकल्प्य नुकसान थतुं हशे आ बधांथी ? केमेरानी Heat पण केटली बधी लागती हशे ? छतां आ बधुं करी-करावीने आपणे एम मानीए के अमे तो शास्त्ररक्षा करीए छीए ! अस्तु. विदेशीओ पासेथी आपणे घणुं घणुं शीखवानुं छे हजी, एम कहेवामां अत्युक्ति नथी.

★

३. कूर्मशतकद्वयं कर्ता : राजा भोजदेव; सं. आर. पिशेल; इंग्लिश अनुवादादि **:** डॉ. वी.एम.कुलकर्णी; प्र.ला.द. भा.सं. विद्यामन्दिर, अमदावाद; ई. २००३

प्राकृत भाषामां गाथाबद्ध आ बे शतकोनो विषय कूर्मावतार छे. सरल, सरस, प्राञ्जल पद्यरचना एक राजवीनी सर्जनक्षमता परत्वे मान उपजावे तेवी छे. सुन्दर प्रकाशन.

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

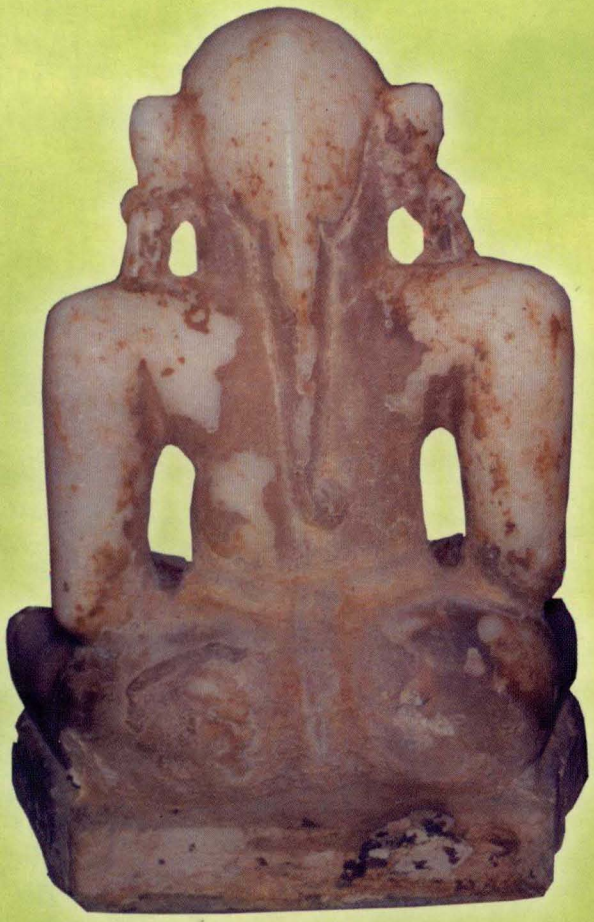

૧૯મા જૈન તીર્થંકર મલ્લિનાથની સ્ત્રીસ્વરૂપ પ્રતિમાનો પૃષ્ઠભાગ
સમ્ભવત: ૧૭મો શતક : ઘુના (મ.પ્ર.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org